Chapter-3

:: अध्याय : तीन ::

:: ओशो साहित्य : एक विहंगम दृष्टिपात ::

:: अध्याय : तीन ::

:: ओशो साहित्य : एक विहंगम दृष्टिपात ::

प्रास्ताविक :

ओशो-साहित्य एक विराट समुद्र के मानिंद है। उनके साहित्य पर एक विहंगम या सामान्य-सा दृष्टिपात करना भी किसी विशाल-विराट समुद्र के थोड़े-से किनारे की टहल-मात्र करने के समान है। ओशो ने — आचार्य, भगवान और ओशो बनने की प्रक्रिया में — हजारों व्याख्यान दिए हैं। जीवन, धर्म, शिक्षा, प्रेम, ईश्वर, मनुष्य, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, पुराण, साहित्य, कला, समाजवाद, गांधीवाद, पूंजीवाद, राजनीति, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईशु, मोहम्मद, लाओत्से, कन्फुशियश, जरथोस्त, खलिल जिब्रान, कबीर, सरहपा, रहीम, मीरा, रैदास, उमरखय्याम, विज्ञान, उसकी विभिन्न प्रशाखाएं, सेक्स, विवाह,

प्रेम-विवाह , जन-जातीय जीवन प्रभृति अनेक xxxxx विषयों तथा साम्प्रतिक समस्याओं पर कई-कई ढंग से कई-कई तरह की बातें कही हैं । गालिबन साढ़े पांच करोड़ शब्द उनके व्याख्यानों में प्रयुक्त हुए हैं । ' जगत की अनेक भाषाओं में उन प्रवचनों का अनुवाद हुआ है । ओडियो-विडियो माध्यमों का पूरा उपयोग हुआ है ।

किसीकी भी शेह-शरम रखे बिना उन्होंने सबको कबीर की भांति खरी-खरी सुनाई है ; फिर चाहे वह अमेरीका के प्रेसिडेण्ट हों , रानी एलिजाबेथ हों , टेक्स कर आथोरीटी हो , सरकार हो या तथाकथित ज्ञानी-साधु-महात्मा हों । इसलिए दुनिया के करोड़ों लोगों ने उन्हें विश्व के "स्पिरिच्युअल लीडर " के रूप में स्वीकृत किया है । उनमें अद्भुत वक्तृता है । वे तिबेट के साधुओं पर , पश्चिम के तत्वज्ञानियों पर , आधुनिक मानसशास्त्रियों पर , यों किसी भी विषय पर बोल सकते हैं । 20 वीं शताब्दी के असाधारण प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों में उनकी गणना होती है । प्रत्येक धर्म , प्रत्येक xxxx संस्कृति , प्रत्येक सभ्यता पर वे कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ बोले ही हैं । उन्हें सुनना हो तो श्रोता को पहले पूर्वाग्रहों से रहित होना होगा । निर्दोष होना होगा , शांत होना होगा । " कोई उन्हें बुद्ध कहता है , कोई उन्हें प्रबुद्ध कहता है , कोई उन्हें जिसस का नया अवतार मानता है .... कोई कहता है , ओशो इज ए जायण्ट इन द फील्ड आफ स्पिरिच्युअल विज़डम. एनोर्मस इण्टेलेक्च्युअल इण्टीग्रिटी याने ओशो. प्रत्येक धर्म में जो तर्कविहीन है उसे लतियाने का साहस उनमें हैं । अपने युग का यह मसीहा अपने समय से काफी आगे निकल गया है । .... मोस्ट पावरफुल एण्ड कोन्ट्रोवर्सियल लीजण्ड आफ अवर टाइम ... ए मास्टर आफ पब्लिसिटी एण्ड आउट-स्पोकन रीवोल्युशनरी . हम अपने आप को समझते हैं , उससे कई

गुना ज्यादा वे हमें समझते हैं । " [2]

ओशो रजनीश के संबंध में विधान कर सकते हैं, परंतु उन तमाम विधानों का संविधान करना, मुश्किल ही नहीं प्रायः असंभव है। क्योंकि उनसे सम्बद्ध तमाम विधानों का योग (टोटल) करें तो भी वे उस योग से बाहर ही रहेंगे। "मछली हो तो जाल में पकड़ सकते हैं, पंछी हो तो पिंजरे में बन्द कर सकते हैं, पर बहते पानी या बहते पवन को कैसे पकड़ सकते हैं? कैसे बन्द कर सकते हैं? प्रत्येक क्षण के संबंध में, प्रत्येक विधान के संबंध में वे सच्चे हैं। रजनीशजी मीरां के विषय में बोलते हैं तब मीरांमय होते हैं। महावीर के विषय में बोलते हैं तब महावीर मय, कृष्ण या क्राइस्ट के विषय में बोलते हैं तब वे कृष्ण या क्राइस्टमय होते हैं। वे आज जिसको आसमान पर चढ़ाते हैं, कल उसको उतार भी सकते हैं। आज जिसको उतार देते हैं, कल उसे अवतार भी कह सकते हैं। किसीको उसमें कन्सिस्टन्सी न भी लगे। कभी उनकी बात किसी विशेष संदर्भ में सच्ची भी ठहरती है, गलत भी। अतएव ऐसे व्यक्ति को अंश में नहीं अखिलत्व में ही प्राप्त कर सकते हैं।" [3]

अभिप्राय यह कि ओशो ने अनेक विषयों पर अनेक संदर्भों में अनेक बातें कही हैं, जो ग्रन्थस्थ हुई हैं। विश्वभर में उनके ग्रंथों की कुल संख्या तकरीबन 600-700 होती है। उनमें से कुछ ग्रन्थों का परिचय यहां प्रस्तुत है।

<u>सुनो भाई साधो :</u>

इस ग्रंथ में कबीर के दश चुने हुए विशिष्ट पदों पर ओशो के व्याख्यान संगृहीत हैं। ये वयाख्यान 11 सितम्बर से 20 सितम्बर, 1974 में रजनीश आश्रम पूना में दिए गए थे। इसमें

उन्होंने कबीर के दश पदों की इतनी सुंदर व विस्तृत व्याख्या की है कि उसके माध्यम से कबीर की विशेषताएं परत-दर-परत उद्घाटित होती गई हैं । इन व्याख्यानों का संकलन तथा संपादन स्वामी चैतन्य कीर्ति ने किया है । इनमें जिन पदों पर ओशो ने प्रवचन दिये थे वे निम्नलिखित हैं — 1. माया महाठगिनि हम जानी ; 2. मन गोरख मन गोविन्दो ; 3. अपन पौ आपु ही बिसरो ; 4. गुरु कुम्हार सिख कुंभ है ; 5. झीनी झीनी बिनी चदरिया ; 6. भक्ति का मारग झीना रे ; 7. घूंघट के पट खोल रे ; 8. संतो जागत नींद न कीजै ; 9. रस गगन गुफा में अजर झरै ; 10. मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ।

"माया महाठगिनि हम जानी" इस प्रथम व्याख्यान के प्रारंभ में ही वे कहते हैं — " कबीर अनूठे हैं । और प्रत्येक के लिए उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है । क्योंकि कबीर से ज्यादा साधारण आदमी खोजना कठिन है । और अगर कबीर पहुंच सकते हैं , तो सभी पहुंच सकते हैं । कबीर निपट गंवार हैं , इसलिए गंवार के लिए भी आशा है ; बे-पढ़े-लिखे हैं , इसलिए पढ़े-लिखे होने से सत्य का कोई भी संबंध महीxहैxx नहीं है । जाति-पांति का कुछ ठिकाना नहीं कबीर की , इसलिए जाति-पांति से परमात्मा का कुछ लेना देना नहीं है । कबीर जीवन भर गृहस्थ रहे — जुलाहे — बुनते रहे कपड़े और बेचते रहे ; घर छोड़ हिमालय नहीं गये । इसलिए घर पर भी परमात्मा आ सकता है । हिमालय जाना आवश्यक नहीं । कबीर ने कुछ भी न छोड़ा और सबकुछ पा लिया । इसलिए छोड़ना पाने की शर्त नहीं हो सकती । "[4] कबीर के सहज गार्हस्थ्य-धर्म की इससे सुंदर व्याख्या और कहां मिलेगी ?

"मन गोरख मन गोविन्दो" पद की व्याख्या करते हुए ओशो कबीर-साहित्य में प्रयुक्त "जतन" शब्द की बात करते हैं — "जतन का अर्थ है : बड़ी होशपूर्वक , सम्हाल कर । जैसे कबीर किसी वचन

में कहते हैं कि लौटती हैं स्त्रियां पनघट से तो गपशप करतीं , बात करतीं , गीत गातीं -- घड़े को सिर पर रखे , हाथ से पकड़ती भी नहीं । फिर कैसे पकड़ती होंगी , किससे पकड़ती होंगी ? जतन से । स्त्रियां लौटती हैं पनघट से । अब तो स्त्रियां नहीं मिलतीं , क्योंकि पनघट नहीं हैं -- नलघट हैं , और वहां उपद्रव है । कबीर के वक्त पनघट थे और वहां से लौटतीं स्त्रियां थीं । एक मीठा काव्य था , उस लौटने में पनघट से । और बात करतीं , चीत करतीं , और घड़े को सिर पर रखे , न हाथ से सम्हालतीं । फिर किससे सम्हालतीं ? भीतर एक होशपूर्वक सम्हाल है -- बारीक है , जतन से -- गिरता नहीं है घट , टूटता नहीं घट । चर्चा चलती रहती है , जतन जारी रहता है । तो कबीर कहते हैं कि रहो इस संसार में ऐसे , जैसे पनघट से आती स्त्री घड़े को रखती है जतन से । जाओ दुकान पर , लेकिन सम्हालो चेतना को । घूमो बाजार में , खो मत जाओ , सम्हालो अपने को । धन हो , स्त्री हो , सम्हालो अपने को । × × × जतन का अर्थ है : एक भीतरी सुरति । गुरजिएफ ने एक शब्द का उपयोग किया है : सेल्फ-रिमेम्बरिंग , आत्म-स्मरण । कुछ भी करो , खुद का होश बनाए रखो -- वही जतन है । बुद्ध का शब्द है : सम्यक् स्मृति -- राइट माइण्डफुलनेस । बुद्ध का शब्द स्मृति ही बिगड़-बिगड़ के सुरति हो गया ।" [5]

कबीर के "जतन" शब्द की इतनी उत्तम व्याख्या हमें और कहां मिल सकती है । ओशो को पढ़ने-सुनने का अर्थ है अनेकों की स्मृति-यात्राओं से गुजरना । गद्यकाव्य का आनंद आता है । कई बार वे शब्दों को खिलाते हैं , जैसे "पनघट" और "नलघट" । "पनघट" याने काव्य और "नलघट" याने उपद्रव ।

इसी प्रकार " मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ? " में ओशो कहते हैं -- " कबीर के ये वचन महत्वपूर्ण हैं : मन मस्त हुआ तब क्यों

बोले । ` जब मस्ती आ जायेगी , जब उस ज्ञान की मदिरा उतरेगी, और जब तुम इतने आनंदित हो जाओगे ... जब ` मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ` , ... तब बोलोगे कैसे । तब बोलना होगा ही क्यों ! इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक तुम मस्त नहीं हो तभी तक बोल रहे हो । आदमी आनंदित होता है तो चुप होता है , दुःखी होता है तो बोलता है । आदमी स्वस्थ होता है तो स्वास्थ्य की चर्चा नहीं करता ; बीमार होता है तो बीमारी की बड़ी चर्चा करता है । जब तुम पूरे स्वस्थ होते हो , तब तुम शरीर की बात ही भूल जाते हो । तब शरीर की बात ही क्या करनी , शरीर का पता ही नहीं चलता । च्वांगत्सु कहता है : जब जूता ठीक आजाता है पैर पर तो पैर भूल जाता है । जब जूता काटता है , तब पैर की याद आती है । जब तुम्हारा सिर स्वस्थ होता है , तब तुम सिर को भूल जाते हो । सच तो यह है कि तुम बे-सिर हो जाते हो । जब सिर में दर्द होता है , तभी सिर का पता चलता है । बीमारी का बोध होता है । xxx इसलिए संस्कृत में दुःख के लिए जो शब्द है , वही शब्द ज्ञान के लिए है ।`वेदना` दुख का अर्थ भी रखता है और `वेदना` वेद का अर्थ भी रखता है — ज्ञान का । दुख का ही बोध होता है । आनंद तो , जैसे शराब हो — सब बोध खो जाता है । पैर में कांटा चुभता है तो पैर का पता चलता है , कांटा न चुभे तो पैर का पता नहीं चलता । " 6

एक बात को समझाने के लिए वे कितने-कितने उदाहरण देते हैं । इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ के व्याख्यान कबीर के अध्येताओं के लिए एक महामूली सामग्री हो सकता है ।

ॐ मणि पद्मे हुम् :

यह एक तिब्बती मंत्र है , जिसका अर्थ होता है — मौन का नाद , कमल में मणि । मौन का भी अपना नाद है , अपना संगीत है ;

यद्यपि बाहरी कान इसे सुन नहीं सकते । संसार में तिब्बत ही एक ऐसा देश है जिसने अपनी समस्त प्रतिभा को अंतर की खोज में समर्पित किया । उसकी उपलब्धियां अतिशय मूल्यवान हैं । प्रस्तुत पुस्तक में ओशो के तीस प्रवचन प्रश्नोत्तर के रूप में संकलित हैं । यह प्रवचन " ॐ मणि पद्मे हुम् " प्रवचनमाला के अन्तर्गत 7 दिसम्बर 1987 से 17 जनवरी 1988 तक दिये गये थे । प्रवचन का स्थल था पूना । उसका प्रथम प्रवचन इसी तिब्बती मंत्र के संदर्भ में है । इसके विषय में ओशो का कहना है : " इस मंत्र की रचना नहीं, गर्भाधान हुआ था । इस मंत्र " ॐ मणि पद्मे हुम् " का हिमालय के शिखरों पर रहस्यदर्शियों के हृदयों में बच्चे की तरह गर्भाधान हुआ था । यह मंत्र आता है तिब्बत से, जो हिमालय का सर्वाधिक गुह्य भाग है । " 7 इसमें जिज्ञासुओंने प्रश्न किये हैं और ओशो ने उनके प्रश्नों के उत्तर दिये हैं, पर ये उत्तर इस प्रकार के हैं कि उसमें धर्म, राजनीति, दर्शन, विज्ञान, इतिहास, पुराण, काव्य आदि अनेक विषयों का समावेश हो जाता है । इस पुस्तक के दूसरे व्याख्यान का शीर्षक है : "अस्तित्व तुम्हें संभालता है ", जो डेविड नामक ओशो के एक विदेशी शिष्य के प्रश्न से शुरू हुआ है । डेविड का प्रश्न है : " प्यारे भगवान, अब तक वर्षों से, मैं आपके पास बैठता रहा हूं । जाने और अनजाने, एक भीतरी पर्वत-शिखर चढ़ लिया गया है -- अधिकांश बिना किसी प्रयास के । आज ही मैंने नीचे की ओर देखा और इस बात ने मुझे भय-भीत कर दिया कि जमीन से मैं कितनी दूर हूं । एक भय कि कहीं मैं गिर न जाऊं, मुझे पकड़ता है । मार्ग छोटे से छोटा होता जा रहा है, और मैं खतरा महसूस करता हूं । क्या आप इस संबंध में मुझे कुछ कहेंगे ? " 8 इसके उत्तर में तो समूचा व्याख्यान है, परंतु उसकी कुछ प्रारंभिक पंक्तियां यहां द्रष्टव्य हैं -- " डेविड, घर वापसी का मार्ग तलवार की धार है । जैसे-जैसे तुम स्वयं के

और-और निकट आते हो, मार्ग संकरे से संकरा होता चला xxxx
जाता है। इस मार्ग के बिलकुल आखिरी छोर पर ही तुम अपना
विशुद्ध अकेलापन पाने वाले हो। भीड़ ने कभी कोई सत्य नहीं पाया
है। उलटे, जब भी कभी किसीने सत्य पाया है, भीड़ ने उसे सूली
लगाकर पुरस्कृत किया है। सत्य को खोजना बहुत खतरनाक है, लेकिन
अति रोमांचकारी, चुनौतीपूर्ण प्रयोग। एक प्राचीन तिब्बती कहावत
है: एक सौ खोजी यात्रा पर निकलते हैं, निन्यानबे कहींxxxxx
मार्ग पर ही खो जाते हैं, भटक जाते हैं, केवल एक — वह भी
बहुत विरल — अपनी खोज के लक्ष्य तक पहुंचता है।" 9

इसी पुस्तक के "हर क्रोस को गिटार बना देना है" नामक प्रवचन
में आनंद प्रेमार्थी ने प्रश्न किया था — "उस रात आप मेरे हृदय
के तारों पर एक मधुर राग छेड़ते प्रवीण संगीतज्ञ जैसे थे। प्यारे
सद्गुरु, क्या मुझे अपना गीत और-और गाने देने के पीछे यही
आपका रहस्य है?" 10 इसके उत्तर में ओशो ने कहा था —
"आनंद xxxxxxx प्रेमार्थी, संगीत ही एकमात्र भाषा है जो कि
मौन के बहुत करीब आती है; एकमात्र ध्वनि जो ध्वनिरहित को
प्रकट करने में समर्थ है। यह समझ लेना है कि संगीत अर्थ नहीं रखता
है, यह शुद्ध आनंद है, उत्सव है। यही एकमात्र कला है जो कि
किसी तरह अनभिव्यक्त को अभिव्यक्त कर सकती है। संगीत की
प्राचीनतम परंपरा यह है कि यह ध्यान से पैदा हुआ था। जिन
लोगों ने ध्यान किया, वे अपने अनुभवों को बताने के लिए कोई
रास्ता न खोज सके। उन्होंने विभिन्न वाद्ययंत्रों का आविष्कार
किया ताकि तुम्हारे भीतर कोई अर्थ पैदा किये बिना, लेकिन
निश्चित ही एक आनंद, एक नृत्य पैदा करते हुए, कुछ कहा जा
सके। यह जरूर ही प्रारंभ में उनके लिए एक अत्यन्त कीमती
रहस्योद्घाटन रहा होगा जिन्होंने ऐसी भाषा खोजी जो कि
भाषा नहीं है।" 11

पतंजलि योग-सूत्र :

यह ग्रंथ चार भागों में विभाजित है । इसमें योग की चर्चा एक विज्ञान के रूप में की गई है । यह पुस्तक उस परम सत्य के विषय में है , जहां योग हमें पहुंचा सकता है । उस परम सत्य के संबंध में है , जिसकी उपलब्धि ओशो को हो चुकी है । पतंजलि और ओशो जीवन और ईश्वर के विषय में कोई सैद्धान्तिक चर्चा नहीं करते , इस अर्थ में उभय को हम "धार्मिक" व्यक्ति नहीं कह सकते । परंतु इन दोनों ने कुछ जाना है , वे दोनों कुछ हो गए हैं , और वे केवल दूसरों की सहायता करते हैं कि वे भी उसे जान लें । वे ऐसी विधियों के बारे में बताते हैं कि आप स्वयं देख सकें । पतंजलि के योग के संबंध में ओशो कहते हैं —

" योग एक सम्पूर्ण विज्ञान है । यह विश्वास करना नहीं सिखाता ; यह जानना सिखाता है । यह तुमसे नहीं कहता कि अंधे अनुयायी हो जाओ ; यह कहता है कि अपनी आँखें खोलो । यह सत्य के संबंध में कुछ भी नहीं कहता , यह सिर्फ़ तुम्हारी दृष्टि की चर्चा करता है : दृष्टि कैसे मिले , देखने की क्षमता कैसे मिले , आँखें कैसे उपलब्ध हों , ताकि जो है वह तुम्हारे सामने उद्घाटित हो जाए । और इस बात की कल्पना करना भी कठिन लगता है कि एक व्यक्ति ने अकेले पूरा विज्ञान निर्मित किया । कुछ भी छूटा नहीं है । लेकिन विज्ञान प्रतीक्षा में है कि मनुष्यता थोड़ा करीब आए ताकि विज्ञान को ठीक से समझा जा सके । " 12

इस ग्रंथ में यह प्रतिपादित है कि पतंजलि और ओशो जैसे महात्मन उन लोगों के लिए हैं जो सत्य की खोज में है , और जो समझते हैं कि वे अंधेरे में टटोल रहे हैं , और जो समझते हैं कि बुद्धपुरुष का प्रकाश — ऐसे व्यक्ति का प्रकाश होता है , जो स्वयं जानता है और जानने में तुम्हारी मदद कर सकता है । सत्यान्वेषण के मार्ग में

वह बहुत उपयोगी हो सकता है । योग-सूत्र भी अपने आपमें पर्याप्त नहीं है । कोई बुद्धपुरुष चाहिए जो उसके मर्म को उद्घाटित कर सके, जो उसे हमारी भाषा में , हमारी समझ में आ सकने वाली अभि-व्यक्ति में कह सके । इस ग्रंथ में ओशो ने यही किया है , क्योंकि हम उनको अपने युगका बुद्धपुरुष मान सकते हैं ।

पतंजलि अत्यन्त विरल व्यक्ति हैं । वे प्रबुद्ध हैं बुद्ध , कृष्ण और जीसस की भांति ; महावीर , मोहम्मद और जरथुस्त्र की भांति ; लेकिन एक ढंग से अलग हैं । बुद्ध , महावीर, मोहम्मद , जरथुस्त्र — इनमें से किसीका भी दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं हैx है । वे महान धर्म-प्रवर्तक हैं , उन्होंने मानव-मन और उसकी संरचना को बिलकुल बदल दिया , लेकिन उनकी पहुंच वैज्ञानिक नहीं है । पतंजलि बुद्ध-पुरुषों की दुनिया में आइंस्टीन हैं । वे अद्भुत घटना है । [13]

इस ग्रंथ में "अहंकार को दुःसाध्य का आकर्षण " नामक व्याख्यान में ओशो ने पतंजलि के संदर्भ में एक बात बताते हुए कहा है — " तुम और ज्यादा अहंकारी न बनो इसलिए मैं पतंजलि पर बोल रहा हूं । देखना और ध्यान रखना । मुझे सदा भय है पतंजलि के बारे में बोलने से । मैं कभी भयभीत नहीं हूं हेराक्लतु , बाशो या बुद्ध के बारे में बोलने से ; मुझे भय है तुम्हारे कारण । xxxxxx पतंजलि सुंदर है , पर तुम गलत कारणों से आकर्षित हो सकते हो । और यह एक गलत कारण होगा — अगर तुम सोचो कि वे कठिन हैं । तब वह कठिनाई ही आकर्षण बनती है । किसीने एडमंड हिलेरी से पूछा , जिसने माउण्ट एवरेस्ट को विजित किया — सबसे ऊंची चोटी को , पर्वत की एकमात्र चोटी को जो अविजित थी — तो किसीने उसको पूछा , " क्यों तुम इतनी अधिक मुसीबत उठाते हो ? जरूरत क्या है ? और अगर तुम चोटी तक पहुंच भी जाओ , तो करोगे क्या तुम ? तुम्हें लौटना तो पड़ेगा ही ।" हिलेरी ने कहा, यह एक चुनौती है मानव-अहंकार के लिए । एक अविजित शिखर को

जीतना ही होता है ।" इसका कोई और लाभ नहीं है । " [14]

समुंद समाना बुंद में :

ओशो एक क्रांतिकारी विचारक-चिंतक तथा आधुनिक रहस्यदर्शी संत हैं । वे जो भी बोलते हैं, कहते हैं, वह सब जीवन की आत्यन्तिक गहराइयों व अनुभूतियों से उद्भूत होता है । वे हमेशा जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श करते हैं । जीवन को उसकी समग्रता में जानने व जीने के प्रयोग करते हैं । वे जीवन्तता के प्रतीक हैं । जीवन की चरम ऊंचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं उन सबका दर्शन हमें उनके साहित्य में उपलब्ध होता है ।"समुंद समाना बुंद में " में संकलित व्याख्यानों का संपादन डा. रामचन्द्र प्रसाद ने किया है । प्रस्तुत पुस्तक में ओशो के नौ लेख हैं -- भारत का दुर्भाग्य , भारत का भविष्य , क्या भारत को क्रांति की जरूरत है ? क्या ईश्वर मर गया है ? मैं युवक किसे कहता हूं ? जीवन और मृत्यु , अहिंसा , ताओ , सत्यं शिवं सुंदरम् ।

यहां उनके प्रथम व्याख्यान "भारत का दुर्भाग्य" से कुछ विचार उद्धृत किए जा रहे हैं --" समय की इस चक्रीय दृष्टि ने हमें भाग्यवादी बना दिया है । भाग्यवादी कोई भी देश कभी समृद्ध नहीं हो सकता है । समृद्धि के लिए चाहिए श्रम , समृद्धि के लिए चाहिए संघर्ष । समृद्धि के लिए चाहिए नया आकाश , नया मार्ग , नया शिखर छूने की कामना , कल्पना , सपने । वे सब हमसे छिन गए । जो हो रहा है , उसे सह लेना है । कुछ करने को हमारे सामने नहीं रह गया है ।" [15] इस प्रकार हमारी समय की संकल्पना , भाग्यवादी चिंतन , अतीतोन्मुखी दृष्टि , पुनर्जन्मवाद की धारणा , कर्मवाद की उपेक्षा प्रभृति कारणों से भारत की दुर्दशा हुई थी और हो रही है ।

"भारत का भविष्य" नामक व्याख्यान की शुरूआत ओशो एक कहानी से करते हैं, जिसमें एक परम संतुष्ट मनुष्य हीरों के चक्कर में पड़कर अपनी जमीन बेचकर भिखमंगे की मौत मरता है। वस्तुतः जो जमीन उसने बेची थी वहीं से हीरे निकलते हैं। फिर ओशो कहते हैं — " भारत के भविष्य में भी यह कहानी सार्थक होगी। या तो भारत अपनी जमीन पर हीरे खोज लेगा या दूसरे की जमीनों पर भिखमंगा होकर मर जायगा। मैं आपको यह बात भी कह दूं कि भारत ने भिखमंगा होने की दौड़ शुरू कर दी है। भारत भिखारी की तरह दुनिया के सामने खड़ा हो गया है। हम भीख मांग रहे हैं और जो कौम भीख मांगने लगती है उस कौम का भीख मांगने के बजाय मर जाना बेहतर है। यह मुल्क बेशर्मी के लिए रोज तैयार होता जा रहा है और जिस कौम की शर्म मर जाती है और जिसे भीख मांगने की तरकीबें और आर्ट का पता हो जाता है उस कौम का कोई भविष्य नहीं।"[16]

गुजराती के शायर झवेरचन्द मेघाणी ने यौवन को परिभाषित करते हुए लिखा है : " घटमां घोडा थनगने, आतम वींजे पांख ; अणदीठेली भोम पर यौवन माडे आंख। " युवान वही होता है, जो निरंतर कुछ न कुछ करना चाहता है, नया सीखना चाहता है, सत्य की उपलब्धि के लिए नित्य नये और जोखिम-भरे प्रयोगों को करना चाहता है। स्वामी रामतीर्थ जब जापान की यात्रा कर रहे थे, तब उनके साथ जहाज में एक नब्बे वर्ष का बूढ़ा भी था। उसके हाथ कंप रहे थे, पर वह चीनी भाषा सीख रहा था। चीनी भाषा दुनिया की कठिनतम भाषाओं में है। चीनी भाषा को सीखना अत्यन्त परिश्रमसाध्य कार्य है, पर वह बूढ़ा उसी कार्य में लीन था। ऐसे व्यक्ति को कौन बूढ़ा कह सकता है ? ओशो "मैं युवक किसे कहता हूं" नामक लेख में कहते हैं — " युवक से अर्थ है ऐसा मन जो सदा सीखने को तत्पर है — ऐसा मन जिसे यह भ्रम पैदा नहीं होगया है कि जो भी जानने योग्य था, वह जान लिया गया है, ऐसा

मन जो बूढ़ा नहीं हो गया है और स्वयं को रूपांतरित करने और बदलने को तैयार है । बूढ़े मन से अर्थ होता है ऐसा मन , जो अब आगे उतना लोचपूर्ण नहीं रहा है कि नए को ग्रहण कर सके , नए का स्वागत कर सके । बूढ़े मन का अर्थ है पुराना पड़ गया मन । उम्र से उसका कोई भी संबंध नहीं है । शरीर की उम्र होती है , मन की कोई उम्र नहीं होती । मन की दृष्टि होती है , धारणा होती है ।" 17

इस संदर्भ में इकबाल का एक शेर स्मृति में कौंध रहा है : "इकबाल जिन्दा वे कौम होती हैं ; जिनकी सुबह कहीं , शाम कहीं होती हैं । " युवानी का भी कुछ ऐसा ही है ।

"अहिंसा" नामक व्याख्यान में वे कहते हैं — " हिंसा का सबसे पहला रूप , सबसे पहला आयाम बहुत गहरा है , वहीं से पकड़ें । सबसे पहली हिंसा दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होती है । जैसे ही मैं कहता हूं कि आप दूसरे हैं , मैं आपके प्रति हिंसक हो गया । असल में दूसरे के प्रति अहिंसक होना असंभव है । हम सिर्फ़ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं , ऐसा स्वभाव है । हम दूसरे के प्रति अहिंसक हो ही नहीं सकते । होने की बात ही नहीं उठती , क्योंकि दूसरे को दूसरा स्वीकार कर लेने में ही हिंसा शुरू हो गई । बहुत सूक्ष्म है , बहुत गहरी है यह बात । सार्त्र का वचन है — " द अधर इज हेल " : वह जो दूसरा है वह नरक है । सार्त्र के इस वचन से मैं थोड़ी दूर तक राजी हूं । उसकी समझ गहरी है । वह ठीक कह रहा है — दूसरा नरक है । लेकिन उसकी समझ अधूरी भी है । दूसरा नरक नहीं है , दूसरे को दूसरा समझने में नरक है । इसलिए जो भी स्वर्ग के थोड़े से क्षण हमें मिलते हैं वह तब मिलते हैं जब हम दूसरे को अपना समझते हैं । उसे हम प्रेम कहते हैं । " 18

महावीर : परिचय और वाणी :

इस ग्रंथ का संपादन स्वामी आनंद वीतराग {डा. रामचन्द्र प्रसाद} ने किया है । इसमें ओशो रजनीश के वे व्याख्यान संकलित हैं जो उन्होंने भगवान महावीर की वाणी को लेकर दिए हैं । इसमें महावीर वाणी के नए-नए अर्थों का पांडित्यमंडित विश्लेषण हुआ है । पुरातनपंथी टीकाकारों की भ्रान्त धारणाओं को यहां धराशायी कर दिया गया है । महावीर वाणी के पूर्ववर्ती टीकाकारों की टीकाओं में जहां हमें भाव-क्षीणता के दर्शन होते हैं, वहां ओशो रजनीश के यहां उनकी मंत्रपूत व्याख्या नव्यता एवं मौलिकता के साथ दृष्टिगत होती हैं । यहां हम देखते हैं कि उनकी व्याख्यान-शैली जितनी ही सरल एवं अकृत्रिम है, सहज वा स्वाभाविक है; उतनी ही उदात्त एवं हृदयहारिणी भी । विश्व के इतिहास में पहली बार महावीर की वाणी को वह अर्थ-गौरव प्राप्त हुआ है, जो स्वयं भगवान महावीर को अभिप्रेत था । इस ग्रंथ के विषय में स्वयं उसके विद्वान संपादक महोदय का निम्नलिखित मत ध्यातव्य रहेगा : " {अन्त में} इतना ही कहना अलम् होगा कि इस कृति के दो आयाम हैं -- जहां एक ओर तो यह भगवान श्री महावीर का परिचय देती है, ऐसा परिचय जो सूक्ष्मता, रोचकता और वैदुष्य के त्रिविध तत्वों से उपेत है, वहीं दूसरी ओर यह भगवान श्री रजनीश के रजनीशत्व पर भी प्रचुर प्रकाश डालती है और उनके दिव्य व्यक्तित्व को शब्दों की परिसीमित रेखाओं में मूर्त करने का असफल प्रयास करती है । आप इस व्याख्या की ~~xxxxxxxxx~~ रसात्मिकता पर मुग्ध हो उठेंगे । रसाभिभूत हो जाएंगे । मुझे विश्वास है कि यह कृति रजनीश-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में पांक्तेय होगी और शास्त्रीय बुद्धिवालों को झकझोर देगी ।" ये बातें शास्त्रों में हों या न हों, स्वयं में खोजनेवाले इन्हें अवश्य पा लेंगे और स्वयं से बड़ा

न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आप्तता ।" [19]

इसके तीन खण्ड हैं : प्रथम खण्ड में महावीर की जीवनधारा और मार्ग, "महावीर का त्याग : पिछले जन्मों की साधना", मूक जगत से तादात्म्य और सापेक्षवाद, "सामायिक, प्रतिक्रमण और चारित्र", कर्मवाद, महावीर के व्यक्तित्व के नये आयाम, अस्तित्व और अहिंसा, निगोद और अन्तर्यात्रा, महावीर की भाषा, गोशालक की कथा का महत्व, महावीर की दृष्टि और भोग, उपसंहार यों बारह अध्याय हैं ।

दूसरे खण्ड में अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम, अप्रमाद यों पांच अध्याय हैं ; तो तृतीय खण्ड में पंच नमोकार सूत्र, धम्मो लोगुत्तमो, शरण की स्वीकृति, "धर्म का परम सूत्र : अहिंसा और स्वभाव, जीवेषणा और महावीर की अहिंसा, समस्वरता और सम्यगाजीव, संयम की विधायक दृष्टि, तपश्चर्या, तप की वैज्ञानिक प्रक्रिया, महावीर की दृष्टि में अनशन, उणोदरी आदि शेष बाह्य तप, अंतर्-तप प्रभृति अन्य द्वादश अध्याय हैं । यों कुल मिलाकर इस ग्रंथ में 29 अध्याय हैं ।

"अस्तित्व और अहिंसा" नामक अध्याय में वे कहते हैं : " हम सबके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि जीवन की भिन्न-भिन्न अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर जैसे व्यक्ति की चित्तदशा क्या होगी ? उनके संबंध में आज जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें उसका कोई उल्लेख नहीं है । उल्लेख न होने का कारण बहुत गहरा और बुनियादी है । महावीर जैसी चेतना की अभिव्यक्ति में परिस्थितियों से कोई भेद नहीं पड़ता । इसलिए "भिन्न-भिन्न परिस्थिति" कहने का कोई अर्थ नहीं । भिन्न-भिन्न अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में चित्त सदा समान है । प्रत्येक स्थिति में साधारण आदमी का चित्त रूपान्तरित होता रहता है । जैसी स्थिति होती है वैसा चित्त हो जाता है । इसीको महावीर बंधन की

अवस्था कहते हैं । स्थिति दुःख की होती है तो उसे दुःखी होना पड़ता है , सुख की होती है तो वह सुखी हो जाता है । इसका मतलब यह हुआ कि चित्त की अपनी कोई दशा नहीं है । सिर्फ बाहर की स्थिति जैसा मौका देती है चित्त वैसा ही हो जाता है । इसका मतलब यह भी हुआ कि चेतना अभी उपलब्ध ही नहीं हुई । असल में महावीर होने का मतलब ही यही है कि भीतर अब कुछ भी नहीं होता । जो होता है वह सब बाहर होता है । यही महावीर, क्राइस्ट , बुद्ध या कृष्ण होने का अर्थ है । भीतर बिलकुल अछूता छूट जाता है । वे दर्पण-मात्र रह जाते हैं । "[20]

ध्यानयोग {प्रथम और अंतिम मुक्ति} :

इस ग्रंथ का संकलन महातत्त्व देव वद्दूद ने , अनुवाद स्वामी संजय भारती ने तथा संपादन संबुद्ध स्वामी योग चिन्मय ने किया है । वैसे देखा जाय तो यह विशुद्ध विज्ञान की पुस्तक है , ध्यान-साधना की मार्गदर्शिका है । परंतु जिस किसीको ओशो का स्पर्श हो जाता है , वह वस्तु चाहे ज्ञान की हो , विज्ञान की हो या शास्त्र की हो , सृजनात्मक-चेतना का एक हिस्सा बन जाती है । आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी के शिक्षा और मनोविज्ञान के व्याख्याता डा. गाई एल. क्लेक्सटन ने ओशो के विषय में कहते हैं " मनोविज्ञान , मनोविश्लेषण , दर्शन और धर्म के चौराहे पर सबसे×महत्त्वपूर्ण×× ओशो सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे सफल शिक्षक हैं । "[21] "ओशो" शब्द का अर्थ भी इसी ग्रंथ में बताया गया है — " भगवान श्री रजनीश अब केवल " ओशो " नाम से जाने जाते हैं । ओशो के अनुसार उनका नाम विलियम जेम्स के शब्द " ओशनिक " से लिया गया है , जिसका अर्थ×× अभिप्राय है सागर में विलीन हो जाना । "ओशनिक " से अनुभूति की व्याख्या तो होती है , लेकिन वे कहते हैं कि अनुभोक्ता के संबंध में क्या ? उसके लिए हम "ओशो " शब्द का प्रयोग करते हैं । बाद में उन्हें पता चला कि ऐतिहासिक

रूप से सुदूर पूर्व में भी "ओशो" शब्द प्रयुक्त होता रहा है, जिसका अभिप्राय है : भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति, जिस पर आकाश फूलों की वर्षा करता है। " 22

यह पुस्तक पांच खण्डों में विभाजित है : प्रथम खण्ड ध्यान के विषय में है। द्वितीय खण्ड में ध्यान का विज्ञान दिया गया है। तृतीय खण्ड "ध्यान की विधियां" ध्यान की नाना प्रविधियों को समझाता है। चतुर्थ खण्ड — "ध्यान में बाधाएं" — इस मार्ग में आनेवाली बाधाओं को रेखांकित करता है। पंचम खण्ड — ओशो से प्रश्नोत्तर— में इस गहन-गंभीर विषय को लेकर जिज्ञासुओं ने जो प्रश्न किए हैं उनके सहज, सरल, अकृत्रिम भाषा में उत्तर ओशो द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। उदाहरण या दृष्टांत के द्वारा ओशो जटिल से जटिल विषय को सरलतम बना देते हैं। उसे यहां लक्षित किया जा सकता है। ध्यान के संबंध में ओशो के विचार ध्यातव्य हैं : ध्यान में कुछ अनिवार्य तत्त्व हैं; विधि कोई भी हो, वे अनिवार्य तत्त्व हर विधि के लिए आवश्यक हैं। पहली है एक विश्रामपूर्ण अवस्था : मन के साथ कोई संघर्ष नहीं, मन पर कोई नियंत्रण नहीं, कोई एकाग्रता नहीं। दूसरा, जो भी चल रहा है उसे बिना किसी हस्तक्षेप के, बस शांत सजगता से देखो भर — शांत होकर, बिना किसी निर्णय और मूल्यांकन के, बस मन को देखते रहो। ये तीन बातें हैं : विश्राम, साक्षित्व, अनिर्णय — और धीरे-धीरे एक गहन मौन तुम पर उतर आता है। तुम्हारे भीतर की सारी हलचल समाप्त हो जाती है। तुम हो, लेकिन "मैं हूं" का भाव नहीं है — बस एक शुद्ध आकाश है। ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं; मैं उन सभी विधियों पर बोला हूं। उनकी संरचना में भेद है, परंतु उनके आधार वही हैं; विश्रxxmx विश्राम, साक्षित्व और एक अनिर्णयात्मक दृष्टिकोण। " 23

यहां पर इसी ग्रंथ से एक वक्तव्य दिया जा रहा है : " तुम कहते हो : " ध्यान करते समय भी मेरा मन पांच सौ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से दौड़ता रहता है। " — उसे दौड़ने दो । और भी तेज दौड़ने दो । तुम द्रष्टा बने रहो । तुम मन को इतनी तेजी से इतनी गति से चारों ओर दौड़ता हुआ देखते रहो । इसका आनंद लो । मन के इस खेल का आनंद लो । इसके लिए हमारे पास एक विशेष शब्द है ; इसे हम कहते हैं — चिद्‌विलास — चेतना का खेल । इसका आनंद लो । सितारों की ओर दौड़ते, तेजी से इधर-उधर डोलते और अस्तित्व भर में कूदते-फांदते मन के इस खेल का आनंद लो । इसमें गलत क्या है ? इसे एक सुंदर नृत्य बन जाने दो । इसे स्वीकार करो । " [24]

इसी प्रश्नोत्तर में ओशो ने एक बहुत बढ़िया बात हमारे धर्म और हमारे साधु-संतों पर बताई है : " धर्म के नाम पर बहुत से लोग मूढ़ हो गए हैं, वे बिलकुल जड़बुद्धि ही हो गए हैं — बिना इस बात को समझे कि मन इतनी तेज क्यों दौड़ रहा है, वे उसे रोकने के प्रयास में लगे हुए हैं । मन बिना किसी कारण के तो दौड़ नहीं सकता । उसके कारण में, उसकी तह में, अचेतन की गहरी तहों में जाए बिना ही वे मन को रोकने की कोशिश करते हैं । रोक तो वे सकते हैं, लेकिन उन्हें एक मूल्य चुकाना पड़ता है, और वह मूल्य यह होगा कि उनकी प्रतिभा खो जाएगी । भारत में चारों ओर घूमो, तुम्हें हजारों संन्यासी और महात्मा मिलेंगे ; उनकी आंखों में झांको — हां, वे अच्छे लोग हैं, भले हैं, लेकिन मूढ़ हैं । यदि तुम उनकी आंखों में झांको तो वहां कोई प्रतिभा नज़र नहीं आएगी, कोई चमक नज़र नहीं आएगी । वे अरचनात्मक लोग हैं ; उन्होंने कुछ भी सृजन नहीं किया । वे बस बैठे रहते हैं । वे बस किसी तरह घिसट रहे हैं ; वे जिन्दा लोग नहीं हैं । उन्होंने

संसार की किसी भी तरह की कोई मदद नहीं की है । उन्होंने तो कोई चित्र या कविता या कोई गीत तक नहीं रचा , क्योंकि कविता रचने के लिए भी तुम्हें प्रतिभा चाहिए , बुद्धि के गुण चाहिए । मैं यह सलाह नहीं दूंगा कि तुम मन को रोको , बल्कि उसे समझो । समझने से एक चमत्कार घटता है । चमत्कार यह होता है कि समझने के कारण , धीरे-धीरे , जब जब कारण तुम्हें समझ में आ जाते हैं और तुम उन कारणों में गहरे झांक लेते हो , तो उन कारणों में गहरे झांकने से ही , वे कारण मिट जाते हैं , और मन धीमा पड़ जाता है । लेकिन प्रतिभा नहीं खोती , क्योंकि इसमें मन पर जोर नहीं डाला जाता ।" [25]

अभिप्राय यह कि ओशो चाहे विज्ञान पर बोलते हों , चाहे किसी शास्त्र पर , चाहे ध्यान पर , उस विषय को उनकी प्रतिभा का पारस-स्पर्श प्राप्त होता है , जिससे वह वस्तु चेतनागत रचनात्मकता से संपृक्त होकर कविता , निबंध , कहानी , लघुकथा प्रभृति का रूप धारण कर लेता है । ओशो की प्रतिभा गणित को भी काव्य बना सकती है । ओशो का गद्य हमें सर्वत्र गद्यकाव्य का-सा आनंद उपलब्ध कराता है ।

घाट भुलाना बाट बिनु :

इस पुस्तक का संपादन प्रो॰ रामचन्द्र प्रसाद ने किया है । इसमें ओशो रजनीश के निम्नलिखित ग्यारह व्याख्यान संगृहीत हैं :— आदेश नहीं निवेदन , "नया वर्ष: नया संदेश " , "अनजाना ही जीवन है " , "सरलता , सजगता और शून्यता " , जीवन और मृत्यु , ज्ञान-गंगा , "कृष्ण की अनासक्ति , बुद्ध की उपेक्षा , महावीर की वीतरागता , क्राइस्ट की तटस्थता " ; "व्यक्ति की शांति और समाज की क्रांति " , प्रेमनगर के पथ पर , जीवन एक स्वप्न , धर्म मनुष्य-केन्द्रित हो ।

इस पुस्तक में उसके विद्वान संपादक प्रो. रामचन्द्र प्रसाद ओशो के व्याख्यानों का विवेचन एवं विश्लेषण करते हुए लिखते हैं : "आचार्य रजनीश के प्रवचनों में रहस्य और अर्थ का रचनात्मक सम्मिश्रण मिलता है और उनके व्यक्तित्व में तरलता एवं सुदृढ़ता का मणि-कांचन संयोग। वे निर्भीक हैं, फिर भी उनमें उस व्यक्ति की झिझक है जो जाड़े में किसी जल-प्रवाह को पैदल चलकर पार करता हो। वे जागरूक हैं, फिर भी उस व्यक्ति के समान हैं जो चारों ओर अपने पड़ोसियों से भयभीत हों। × × × यदि उनके प्रवचन अगाध प्रतीत होते हैं तो इसका कारण यह है कि वे निस्सीम हैं ; यदि वे दुर्ग्राह्य हैं तो इसका कारण यह है कि वे जीवन्त हैं। आचार्यजी ग्रंथों और विश्वासों के उस पार जाते हैं जहां स्वयं जीवन है। वे चाहते हैं कि हम जीवन से, स्वयं संयुक्त हो जायें और हममें इस ज्ञान का उन्मेष हो कि हम वस्तुतः क्या हैं।" 26

"आदेश नहीं, निवेदन" नामक व्याख्यान में एक सुंदर प्रसंग आया है। एक बार आचार्यजी यात्रा कर रहे थे। डिब्बे में एक यात्री उन्हें देखकर सकपका गया, क्योंकि उसे सफ़र में शराब पीने की आदत थी। शराब और सोडा आ गई थी कि अचानक आचार्यजी टपक पड़े तो वह बेचारा सकपका गया। वह अपना प्रोग्राम स्थगित करने वाला था पर ओशो ने उसे साग्रह पीने के लिए कहा। उसने डरते-डरते शराब पी। बाद में उन्होंने ओशो से जो बात कही वह बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसे लेकर ओशो की टिप्पणी भी : "आप संत जैसे दिखाई पड़ने वाले पहले आदमी हैं जो मुझे भले आदमी मालूम पड़े। असल में संत भले आदमी हो ही नहीं सकते। अधिकतर संत सैडिस्ट होते हैं, या मैसोचिस्ट होते हैं। या तो वे दूसरों को सताते हैं या खुद को सताते हैं। और जो खुद को सताने में कुशल होता है वह दूसरे को सताने का अधिकार पा जाता है।" 27

"नया वर्ष : नया संदेश " व्याख्यान के प्रारंभ में ही वे एक अनूठी बात कहते हैं : " नए वर्ष के नए दिन पर पहली बात तो यह कहना चाहूंगा कि दिन तो रोज ही नया होता है, लेकिन रोज नए दिन को न देख पाने के कारण हम वर्ष में कभी-कभी नए दिन को देखने की कोशिश करते हैं । अपने को धोखा देने की तरकीबों में से एक तरकीब यह भी है । दिन तो कभी भी पुराना नहीं लौटता है । रोज, हर पल और हर क्षण नया होता है, लेकिन हमने अपनी पूरी जिन्दगी को पुराना कर डाला है । उसमें नए की तलाश मन में बनी रहती है, तो वर्ष में एकाध दिन नया दिन मानकर अपनी इस तलाश को पूरा कर लेते हैं । " 28

"कृष्ण की अनासक्ति, बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता, क्राइस्ट की तटस्थता " वाले व्याख्यान में ओशो इन चारों प्रबुद्धों का सम्यक् विवेचन करते हैं । ओशो की विश्लेषण-शक्ति, ओशो की तर्क-शक्ति, ओशो की सर्जनात्मक प्रतिभा का हमें यहां पता मिलता है । इस व्याख्यान के अंत भाग से एक गद्यांश यहां उद्धृत किया जा रहा है : "व्यक्तिगत चुनाव है । कुछ लोग हैं जो पगडंडियों पर ही चलना पसंद करते हैं । उन्हें चलने का मजा ही तब आयेगा जब पगडंडी होगी । जब वे अकेले होंगे, जब न कोई आगे होगा, न कोई पीछे होगा । जब भीड़ के धक्के न होंगे और जब प्रतिपल उन्हें रास्ते खोजने पड़ेंगे घने जंगल में, तभी उनकी चेतना को चुनौती मिलेगी । वे पगडंडियों को खोज कर ही पहुँचेंगे । कुछ लोग हैं जो पगडंडियों पर चलना बिलकुल आनंदपूर्ण न पाएंगे । अकेला होना उन्हें भारी पड़ जायेगा । सबके साथ होना ही उनका होना है, सबके साथ ही उनका आनंद है । आनंद उनके लिए सहजीवन, सहयोग में, साथ में हैं, संग में हैं । वे राजपथ पर चलेंगे । निश्चित ही, पगडंडियों पर चलनेवाले उदास चित्त हो चल सकते हैं । राजपथ पर चलनेवाले उदासी से चलेंगे तो पगडंडियों

पर धक्का दे दिए जायेंगे । राजपथ पर जहां लाखों लोग चलेंगे , वहां नाचते हुए ही चला जा सकता है , वहां गीत गाते हुए ही चला जा सकता है । पगडंडियों पर चलनेवाले शांति से चल सकते हैं , राजपथ पर चलनेवालों पर अशांति के बादल भी आते रहेंगे । उनको उसके लिए भी राजी होना पड़ेगा । यही उनकी शांति होगी । पगडंडी पर नाचनेवाले अपनी निपट निजता के आनंद में तल्लीन हो सकते हैं । राजपथ पर चलनेवालों को दूसरों के सुख-दुःख में भागीदार भी होना पड़ेगा । यह सब भेद होंगे । लेकिन कृष्ण , जैसा मैंने कहा, मल्टी डाइमेंशनल हैं । उनका चुनाव राजपथ का है । और ठीक से अगर हम समझें तो परमात्मा तक पहुंचने का कोई एक मार्ग नहीं बन सकता है कि वह परमात्मा तक पहुंचा दे । परमात्मा तक पहुंचने के लिए कोई बना हुआ मार्ग नहीं है । सब अपनी तरह से, अपने ढंग से पहुंच सकते हैं । पहुंचने पर यात्रा एक ही मंजिल पर पूरी हो जाती है — उनकी भी जो वीतरागता से जाते हैं ,उनकी भी , जो तटस्थता से जाते हैं , उनकी भी जो उपेक्षा से जाते हैं, उनकी भी जो आनंद से जाते हैं । मंजिल एक है , रास्ते अनेक हैं । प्रत्येक व्यक्ति को , उसके जो अनुकूल है , उसे चुन लेना चाहिए । उसे इसकी बहुत चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि कौन गलत है , कौन सही है । उसे जानना चाहिए कि उसके अनुकूल , उसके स्वभाव के अनुकूल क्या है । " 29

जिस प्रकार प्रेम की कोई मार्गदर्शिका नहीं होती । उसी प्रकार सत्य , ईश्वर-प्राप्ति , काव्य-रचना उसकी भी कोई मार्गदर्शिका नहीं हो सकती । थोड़ा बहुत प्रकाश मिल सकता है । पर अंधेरों का नाश तो भीतर के प्रकाश से ही होगा । और यह भीतर की तलाश सबकी अलग-अलग , अपनी-अपनी , होती है । इसीको ही "स्वधर्मे निधनं श्रेय , परधर्मो भयावह " कहा गया । पर उसका अर्थ ही लोगों ने दूसरा लगा लिया । यहां धर्म अर्थात् स्वभाव । हम अपने स्वभाव पर चलकर ही कुछ प्राप्त कर सकते हैं । दूसरों को

देखादेखी करने जायेंगे तो गांठ का खोने की नौबत आ सकती है । इस बात को यहां कितने अच्छे तरीके से समझाया गया है ।

तत्वमसि :

"तत्वमसि" में ओशो के विभिन्न समय पर विभिन्न लोगों को अनेकानेक विषयों पर लिखे पत्र संग्रहीत हैं । इसका संपादन स्वामी योग चिन्मय ने किया है । इसके संपादन में चार पुस्तकों को संकलित किया गया है : 1. क्रांति-बीज , 2. पथ के प्रदीप , 3. अन्तर्वीणा, 4. घूंघट के पट खोल । इन पत्रों को लघु गद्य-खण्डों के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उनको शीर्षक भी दिए गए हैं , परंतु ये शीर्षक पत्र के हिस्से नहीं हैं । वे संपादक के अपने भाव हैं । [30]"तत्वमसि" में संग्रहीत पत्रों के विषय में लिखा गया है :

"भगवान श्री रजनीश के ये हस्तलिखित पत्र अमूल्य हैं । इन पत्रों में उनकी उपलब्धियों का , अनुभूतियों का , उपदेशों का , सार-निचोड़ सूत्रों के रूप में प्रस्तुत है । इनमें जीवन , साधना और सिद्धि के विभिन्न आयामों का सूक्ष्मतम उद्घाटन हुआ है । इन पत्रों में उपनिषद के गीतों की ताजगी है । वेदमंत्रों की तेजस्विता है । बाइबल, कुरान और गीता की गहराई है । ये पत्र साधकों , शिष्यों ,भक्तों एवंप्रेमिजनों की आत्मीयता में लिखे गये हैं । हो सकता है कि ये पत्र आपकी भी प्यास को जगाये । आपमें एक "दिव्य-विरह" को जन्म दें । आपको "नींद" से झकझोर कर उठायें । और आपके लिए वे एक आमंत्रण और आह्वान बन जायें । हो सकता है कि ये पत्र आपके अन्तःकरण में दिव्यता के बीज बन जायें और प्रेम , श्रद्धा और आस्था का खाद-पानी पाकर अंकुरित होने लगें । हो सकता है : ये पत्र आपकी अन्तर्यात्रा में — परम चैतन्य और "स्वभाव" की खोज में — पाथेय बन जायें । " [31]

इस 663 पृष्ठों के ग्रंथ में भगवान श्री रजनीश के पांच सौ बीस पत्र हैं जो अमृत्व को प्राप्त कर चुके हैं । "अहं ब्रह्मास्मि- मैं ब्रह्म हूं ; तत्वमसि — वही है तू भी " यह उसका बीज-मंत्र है ।

मनुष्य की जो परम संभावना है — दिव्यता , भगवत्ता , परमानंद , मुक्ति , निर्वाण — वह उनमें ‖ओशो में ‖ फली भूत हुआ है । वे परम धन्यता की , परम संतृप्ति की , सिद्धावस्था की स्थिति को उपलब्ध हुए हैं । अब वे सभी संतों , ज्ञानियों एवं ऋषियों के साथ मिलकर समवेत स्वर में गाते हैं — "अहं ब्रह्मास्मि" । इस परम उद्घोष के , इस परम उपलब्धि के वे स्वयं प्रमाण हैं — स्वयं गवाह हैं , और इसलिए तो वे इतने आश्वस्त स्वर में कह सकते हैं कि जो उनमें घटित हुआ है — वह सबमें घटित हो सकता है । और इस रूपांतरण की घटना के कारण उनके समग्र अस्तित्व से सतत निनाद होता रहता है । प्रस्तुत ग्रंथ में पत्रों के रूप में जो सूत्र , जो मंत्र उपलब्ध होते हैं , वे उस निनाद के ही परिणाम हैं ।

इस समुद्र से कुछ बूंदें ही उद्धृत की जा सकती हैं : "ज्ञान से जो पाया जाता है , प्रेम उसे लुटा देता है । ज्ञान से परमात्मा जाना जाता है , प्रेम से परमात्मा हुआ जाता है । ज्ञान साधना है , प्रेम सिद्धि है । "[32] देखिए एक अन्य उदाहरण — मौन का संगीत से : " सारे वृक्षों पर नयी पत्तियां आ गयी हैं । और नयी पत्तियों के साथ न मालूम कितनी नयी चिड़ियों और पक्षियों का आगमन हुआ है । उनके गीतों का जैसे कोई अंत ही नहीं है । .... और फिर मैं एक अभिनव संगीत-लोक में चला जाता हूं ... यह संगीत प्रत्येक के पास है । इसे पैदा नहीं करना होता है । वह सुन पड़े उसके लिए केवल मौन होना होता है । चुप होते ही कैसा एक परदा उठ जाता है । जो सदा से था , वह सुन पड़ता है और पहली बार ज्ञात होता है कि हम दरिद्र

नहीं है । एक अनंत संपत्ति का पुनराधिकार मिल जाता है । फिर कितनी हंसी आती है — जिसे खोजते थे , वह भीतर ही बैठxxxxx बैठा था । " [33] है न कबीर की भाषा — "मोको कहां ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में " या " वैसे घट-घट राम है , दुनिया देखे नाहिं ।"

"प्रेम असुरक्षा में छलांग है " नामक पत्र में प्रेम की कितनी सुंदर अभिव्यक्ति है । प्रेम की अभिव्यक्तियां हो सकती हैं , परिभाषाएं नहीं । क्योंकि "कोई हद ही नहीं यारब मोहब्बत के फसाने की " । यह तो अनंत वाला मामला है । अब देखिए , ओशो क्या कहते हैं : " प्रेम । प्रेम है , तो प्रश्न नहीं है । क्योंकि प्रेम सदा ही सबकुछ खोने को तैयार रहता है । लेकिन यदि प्रेम नहीं है , तो फिर प्रश्न ही प्रश्न हैं । प्रेम तो है पागल । या कहें — अंधा । लेकिन प्रेमरिक्त समझदारी से प्रेम का पागलपन अxxxxxx अनंतगुना शुभ है । और प्रेमरिक्त आंखों से प्रेम का अंधापन अनंतगुना वरणीय है । ... और ध्यान रहे कि प्रेम इतने सोच-विचार में नहीं पड़ता है । प्रेम है कुछ , तो जोखिम है । वह अज्ञात के हाथों में स्वयं को समर्पित करना है । प्रेम असुरक्षा (इनसीक्युरिटी) में छलांग है । समाज है सुरक्षा की व्यवस्था (सीक्युरिटी सिस्टम) । " [34] यहां स्मृति में मेरे निर्देशक महोदय का एक दोहा कौंध जाता है :

" प्रेम विषय है भाव का , नहीं गणित व्यापार ।
आंखें होतीं चार हैं , दिखता नहीं लगार ।। " [35]

"धर्म की दो अभिव्यक्तियां — तथाता और शून्यता " नामक पत्र में ओशो ने धर्म की जो व्याख्या की है वह अनूठी है ।" सेहेई ( ) के शिष्य सुइबी ( ) ने एक दिन अपने गुरु से पूछा : "प्यारे गुरुदेव । धर्म का मूल रहस्य क्या है ? " सेहेई ने कहा : "प्रतीक्षा करो और जब हम दोनों के अतिरिक्त यहां कोई भी नहीं होगा , तब मैं तुझे बताऊंगा । " .... लेकिन हर बार वह अपना प्रश्न पूरा भी न कर पाता कि सेहेई अपने

ओंठों पर अंगुली रखकर उसे चुप होने का इशारा कर देता । ऐसे उसने [सेहेईने] बार-बार बताया कि "धर्म का मूल रहस्य मौन है" -- लेकिन सुइकी कुछ भी न समझा । शब्द से ही समझने की जिद्द, सत्य को समझने में बड़ी से बड़ी बाधा है । ... और फिर रात उतर आयी और पूर्णिमा का चांद आकाश में ऊपर उठ आया । सुइकी ने कहा : "अब मैं कब तक प्रतीक्षा करूं ? " ... तब सेहेई उसे लेकर झोंपड़े के बाहर आ गया । सुइकी ने कहा : यहां अब कोई भी नहीं -- अब तो कुछ कहें । " सेहेई ने तब सुइकी के कान में फुसफुसाकर कहा : "बांसों के ये वृक्ष यहां लंबे हैं । और बांसों के वे वृक्ष वहाँछोटे हैं । और जो जैसा है, वैसा है -- इसकी पूर्ण स्वीकृति ही स्वभाव में प्रतिष्ठा है । और स्वभाव धर्म है । और स्वभाव में जीना धर्म का मूल रहस्य है । निःशब्द को जो न सुन सके -- उसे शब्द से ज्यादा-से-ज्यादा बस इतना ही कहा जा सकता है । शब्द में धर्म की अभिव्यक्ति है : तथाता [ ] । निःशब्द में धर्म की अभिव्यक्ति है : शून्यता [ ] । " 36

भारत के जलते प्रश्न : स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का :

इस ग्रंथ का संपादन स्वामी दयाल भारती तथा मा अमृत साधना ने किया है । इसका संयोजन स्वामी योग अमित तथा संकलन मा प्रेम कल्पना तथा स्वामी प्रेम राजेन्द्र ने किया है । मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत साहित्यकार कविश्री राजेन्द्र अनुरागी ने इसकी भूमिका लिखी है । इसमें कुल 24 व्याख्यान संकलित हैं : समस्याओं के ढेर, गरीबी और समाजवाद, राष्ट्रभाषा और खंडित देश, पूंजीवाद की अनिवार्यता, भारत के भटके युवक, समाजवाद अर्थात् पूर्ण विकसित पूंजीवाद, धर्मविरोधी तथाकथित समाजवाद, पूंजीवाद की नैसर्गिक व्यवस्था, कोरा शब्द : लोकतांत्रिक समाजवाद, "पूंजीवाद, समाजवाद और सर्वोदय", समाजवाद क्या -- सिर्फ राज-

नीति है , समाजवाद : दासता की एक व्यवस्था , पूंजीवाद : ज्यादा मानवीय व्यवस्था , लोकशाही समाजवाद : एक भ्रान्त धारणा , क्रांति भी वैज्ञानिक प्रक्रिया , क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार , प्रगतिशील कौन , धर्म और राजनीति , समाज परिवर्तन के चौराहे पर , आज की राजनीति , भारत किस ओर , नये भारत की दिशा , भारत के निर्णायक क्षण , नया भारत ।

ऊपर व्याख्यानों के जो शीर्षक दिए गए हैं उनसे ही प्रतीत होता है कि उनमें व्यक्त विचार किस प्रकार के होंगे । स्थापित अवधारणाओं तथा गतानुगतिकता का यहां हैx छेद उड़ गया है । राष्ट्रभाषा और खण्डित देश , पूंजीवाद की अनिवार्यता , धर्मविरोधी तथाकथित समाजवाद , समाजवाद : दासता की एक व्यवस्था , लोकशाही समाजवाद : एक भ्रान्त धारणा जैसे व्याख्यान बड़े विचारोत्तेजक एवं मौलिक हैं ।

कविश्री राजेन्द्र अनुरागी इसकी भूमिका में लिखते हैं : "और यह विश्व आज स्वनिर्मित बारूद के ढेर पर आ बैठा है । आज के पहले इतना बड़ा खतरा इस विश्व के अस्तित्व पर कभी नहीं आया था । मनुष्य ने अपनी ही अस्मिता के खिलाफ जो किस्म-किस्म साजिशें रची हैं , उनका ही थोक परिणाम इस सर्वxxxx× सर्वनाशी विश्वव्यापी खतरे के रूप में सामने है । इससे बचने और अपनी प्यारी दुनिया को बचाने का बस , एक ही उपाय है , और वह है , उन सारी जड़ मान्यताओं और अवधारणाओं का उन्मूलन , जिनके रहते यह खतरा पैदा हुआ और परवान चढ़ा है । प्रस्तुत पुस्तक में भगवानश्री ने इन्हीं सबको सत्य की कसौटी पर कसा-परखा है और सरल-सुबोध शैली में व्यक्त किया है । ... दीवारें सिर्फ बाहर भर नहीं होतीं ; दीवारें भीतर भी होती हैं । और ये भीतर की दीवारें कहीं ज्यादा मजबूत हुआ करती

हैं । इन्हें तोड़ना ज्यादा मुश्किल होता है । भगवान श्री रजनीश ने इन्हें तोड़ा है । वे राष्ट्रों की, जातियों की, संप्रदायों की उन सभी सीमाओं को नकारते हैं, जिनके रहते हम निरंतर छोटे होते जाते हैं, विराट नहीं हो पाते । .... प्रस्तुत पुस्तक को पूर्वाग्रहमुक्त होकर प्रज्ञागत विवेक के साथ पढ़ भर जाना है, फिर जो घटित होना है, स्वयमेव होना है । " 37

पुस्तक के फ्लेप पर लिखा है : " भारत का सारा अतीत स्वर्णयुग बन सकता था । लेकिन जो उसको स्वर्णयुग बना सकते थे वे सारे पीठ दिखाकर चले गये । जिंदगी तो चलेगी, काम तो चलेगा, चाहे कोई भाग जाये, चाहे कोई जंगलों में छिप जाये — कोई और चलायेगा जिंदगी को । .... हिन्दुस्तान में आनेवाले भविष्य में साधु की पूजा बन्द हो जानी चाहिए अगर वह साधु जिंदगी से आँखें बन्द करके भागता है । उससे तो हम आशा कर सकते हैं कि जिसने भीतर कुछ पाया हो वह बाहर के लोगों के लिए कुछ करे । उससे भी आशा नहीं तो किससे यह हो सकती है ? ... धर्म है मंजिल, राजनीति है मार्ग । मार्ग कभी मंजिल के ऊपर नहीं हो सकता । अगर यह हमारे ध्यान में हो तो हम आनेवाले दिनों में अच्छे आदमी को ताकत दें, बल दें, अच्छे आदमी के लिए जीवन को बदलने की और सत्ता को हाथ में लेने की सुविधा जुटाएँ तो कोई कारण नहीं कि आनेवाला भविष्य भारत का स्वर्णिम और सुंदर नहीं हो सकता है । .... हमने जो विचार किया था वह पतन का है । हमारे अच्छे युग पहले हो चुके, गोल्डन एज पहली हो चुकी । सतयुग, द्वापर, त्रेता, सब हो चुके — पीछे कलियुग । रोज हम पतित हो रहे हैं । .... पतन की धारणा के नीचे जो भी हमने खोजे थे, वे आज की समस्याओं का समाधान नहीं है । क्योंकि आज हम विकास की धारणा के अन्तर्गत जी रहे हैं । ... इतना काफी नहीं है कि पतन न हो, जरूरी है कि विकास हो । विकास हो

मतलब : स्वर्णयुग आगे रखना होगा भविष्य में । अब तक के सब स्वर्णयुग पीछे रहे हैं । रामराज्य हो चुका, वही ; जो हो चुका था वही रामराज्य है, लेकिन स्वर्णयुग आगे है ; यह हमें बदलना पड़ेगा । .... देश के सोने की चिड़िया होने की बातें हैं । वे बातें कुछ लोगों के लिए हमेशा सच रही हैं, वे देश के लिए कभी नहीं थीं । कुछ लोगों के लिए यह देश हमेशा से सोने की चिड़िया था, अभी भी उनके लिए है, लेकिन पूरे देश के लिए सोने की चिड़िया की बात बिलकुल बेमानी है । देश हमेशा से गरीबी में रहा है । ... और यह बहुत अशोभन है कि अध्यात्मवादी भौतिकवादियों के सामने भीख माँगे । लेकिन हम बीस साल से भीख माँग रहे हैं । और आगे भी .... " 38

ऊपर जो उद्धरण दिए गए हैं, उन्हें पुस्तक में फ्लैप पर (आगे-पीछे) दिया गया है, परंतु उनका चयन समूची पुस्तक से हुआ है । जिस प्रकार भात पका है या नहीं, यह देखने के लिए कुछ दाने-भर चबाने होते हैं, पूरी पतीली के दाने नहीं । ठीक उसी प्रकार यहाँ व्यक्त इन कतिपय विचारों से ही ज्ञात हो चलता है कि इसमें किस प्रकार के वैचारिक स्फुल्लिंग होंगे ।

अभी तक हम राष्ट्रभाषा और हिन्दी को लेकर एक सिरे से कुछ लोगों की बातें लगातार-लगातार सुनते आये हैं । आइये, देखें ओशो का इस विषय पर क्या कहना है : "राष्ट्रभाषा बनाने का खयाल ही राष्ट्र को खण्ड-खण्ड में तोड़ने का कारण बनेगा । लेकिन हमें वह भूत जोर से सवार है कि राष्ट्रभाषा होनी चाहिए । अगर राष्ट्र को बचाना हो तो राष्ट्रभाषा से बचना पड़ेगा । और अगर राष्ट्र को मिटाना हो तो राष्ट्रभाषा की बात आगे भी जारी रखी जा सकती है । .... फिर मेरी दृष्टि यह भी है कि यदि हम राष्ट्रभाषा को थोपने का उपाय न करें तो शायद बीस-पच्चीस वर्षों में कोई एक भाषा विकसित हो और धीरे-धीरे

राष्ट्र के प्राणों को घेर ले । वह भाषा हिन्दी नहीं होगी , वह भाषा हिन्दुस्तानी होगी । उसमें तमिल के शब्द भी होंगे , तेलगू के भी , अंग्रेजी के भी , गुजराती के भी , मराठी के भी । वह एक मिश्रित नयी भाषा होगी जो धीरे-धीरे भारत के जीवन में से विकसित हो जायेगी । लेकिन अगर कोई शुद्धतावादी चाहता हो कि शुद्ध हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना है तो यह सब पागलपन की बातें हैं । उससे कुछ हित नहीं हो सकता है । " 39

अंग्रेजी भाषा के संबंध में ओशो के जो विचार हैं वे भी ध्यातव्य हैं : " अंग्रेजी को देश से हटाना बहुत आत्मघाती होगा । विगत दो सौ वर्षों में अंग्रेजी के माध्यम से हम जगत से संबंधित हुए हैं । और विगत दो सौ वर्षों में जो भी महत्त्वपूर्ण निर्मित हुआ है , वह अंग्रेजी भाषाभाषी लोगों के द्वारा निर्मित हुआ है । और आने वाले भविष्य में भी अंग्रेजी का जगत निरंतर विकास और आविष्कार और खोज करता रहेगा । .... आज सारी दुनिया अंग्रेजी जगत से संबंधित होती जा रही है । हर युग की एक भाषा होती है । उस युग की भाषा वही होती है जो उस युग को सर्वाधिक दान देती है । हमारे देश की कोई भी भाषा अभी जगत भाषा नहीं बन सकती , क्योंकि जगत के विकास में हमारा आज कोई कंट्रीब्युशन , कोई दान नहीं है । न हमने यंत्र दिए हैं , न हमने समृद्धि दी है , न सुख दिया है । हमने विश्व को रूपांतरित करने के लिए आज कुछ भी नहीं दिया है । जो भाषा आज सर्वाधिक दान करेगी वही भाषा जगत की भाषा बनेगी । हमें इतने समर्थ होना पड़ेगा , इतने आविष्कारक , इतने वैज्ञानिक , तब हमारी कोई भाषा जागतिक महत्त्व की हो सकती है । लेकिन आज अंग्रेजी को अपने से तोड़ना बहुत महंगा पड़ जायेगा । " 40

ओशो ने समाजवाद का भी विरोध किया है । और यह ध्यान रहे कि ओशो ने यह तब कहा था , जब समाजवाद का सूर्य मध्याह्न

में तपता था । इधर रूस के पतन के बाद तो बहुत से लोगों ने अपनी टोपियां बदल दी हैं । परंतु ओशो के साथ यह बात नहीं है । ओशो ने समाजवाद की आलोचना तब की थी , जब समाज-वाद की बात करने वालों का प्रगतिवादियों में शुमार होता था । समाजवाद के खिलाफ बात करनेवालों को बुर्जुआ , प्रतिक्रियावादी, और न जाने क्या-क्या कहा जाता था , तब ओशो ने समाजवाद को आड़े हाथों लिया था । "समाजवाद : दासता की एक व्यव-स्था । " नामक व्याख्यान में ओशो कहते हैं :

"समाजवाद का अर्थ है , राज्य-पूंजीवाद --- स्टेट-कैपिटलिज्म । समाजवाद का अर्थ है , संपत्ति व्यक्तियों के पास न हो , संपत्ति की मालकियत राज्य के पास हो । लेकिन समाजवाद यह नहीं कहता कि वह "राज्य-पूंजीवाद " है । वह कहता है , वह पूंजी-वाद का विरोधी है । यह बात झूठ है । समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी नहीं है । समाजवाद , जो पूंजी की सत्ता बहुत लोगों में वितरित है , उसे राज्य में केन्द्रित कर देना चाहता है । और व्यक्तियों के हाथ में जब पूंजीवाद इतना नुकसान पहुंचाता है तो राज्य के हाथ में कितना पहुंचायेगा । इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है । .... इसलिए समाजवाद का दूसरा अर्थ है , गुलामी की , दासता की एक व्यवस्था । समाजवाद का अर्थ है , राज्य मालिक हो जाये और समाज के सारे लोग गुलाम और दास की हैसियत से जियें । असल में पूंजीवाद ने पहली बार व्यक्ति को हैसियत और स्थिति दी । समाजवाद का मतलब है , सामंतवाद वापस लौट आये । इतना ही फर्क होगा कि जहां राजा थे वहां राजनीतिज्ञ होंगे । राजाओं के हाथ में इतनी ताकत कभी न थी जितनी समाजवाद राजनीतिज्ञ को दे देगा । समाजवाद भविष्य के लिए भयंकर गुलामी का सूत्रपात है । और

अगर स्वतंत्रता के प्रेमियों को थोड़ी-सी भी स्वतंत्रता की आकांक्षा हो तो समाजवाद से बहुत ही सचेत होने की जरूरत है । " 41

इसी प्रकार "प्रगतिशील कौन ? " नामक व्याख्यान में भी गतानुगतिक बात नहीं करते , कही हुई बात नहीं करते , एक नयी बात करते हैं , जो हमें एकबारगी सोचने पर विवश कर देती है :

"पहली बात , रूढ़िवादी कौन है ? हू इज आर्थोडोक्स ? इसे बताना बहुत आसान है । आर्थोडोक्स एक पत्थर की तरह है । वजन भी है उसमें , ठोसपन भी है उसमें । अतीत का इतिहास भी है उसके पास , रूपरेखा भी है । हाथ में पकड़ा भी जा सकता है , इसलिए इतिहास सदा से तय है कि रूढ़िवादी कौन है ? आर्थोडोक्स कौन है ? लेकिन प्रगतिशील कौन है ? हू इज प्रोग्रेसिव ? हवा की तरह है बात । न कोई आकार है , न कोई रूपरेखा है , और हवा को जितनी जोर से पकड़ो उतनी ही मुट्ठी के बाहर हो जाती है । और जिस दिन प्रोग्रेसिव पकड़ में आ जाता है कि यह रहा प्रोग्रेसिव उस दिन वह आर्थोडोक्स हो चुका होता है । इसलिए पकड़ में आ जाता है । अगर परिभाषा हो सके कि कौन है प्रगतिशील , अगर यह पकड़ में आ सके , अगर यह मुट्ठी में बन्द हो जाये , तो समझना कि प्रगतिशील मर चुका है । आर्थोडोक्स ही सिर्फ पकड़ में आता है । वह डिफाइनेबल है , उसकी व्याख्या हो सकती है । प्रगतिशील का अर्थ ही यही है कि जिसका कोई संबंध अतीत से नहीं है , भविष्य से है । भविष्य अभी पैदा नहीं हुआ । जो पैदा हो गया है उसके संबंध में निश्चित हुआ जा सकता है कि वह क्या है और जिसका संबंध भविष्य से है उसके संबंध में बहुत निश्चित नहीं हुआ जा सकता है कि वह क्या है । क्योंकि उसका संबंध अनजान से है , वह जो नहीं पैदा हुआ उससे । हम एक बूढ़े के संबंध में निश्चित कह सकते हैं कि वह क्या है । हम एक बच्चे के संबंध में ~~नहीं कह सकते~~ निश्चित नहीं कह सकते कि वह क्या है क्योंकि बच्चा अभी होने

को है और जिस दिन हो चुका होगा उस दिन बच्चा नहीं होगा । उस दिन वह बूढ़ा हो गया होगा । "[42]

अभिप्राय यह कि ओशो हर समस्या पर, हर प्रश्न पर, हर पहलू पर एक नयी दृष्टि डाल देते हैं । दर्शनशास्त्र विभाग के प्रो. प्रमोदकुमार उपयुक्त ही कहते हैं कि कि रजनीश बड़े ही प्रतिभाशाली हैं और उनके मुकाबले का वक्ता अभी भारत में कोई नहीं है । देश के वर्तमान सूने वैचारिक क्षितिज में रजनीश जैसे नक्षत्रों का रहना भारत की शोभा होगी ।[43] ऊपर हमने देखा कि ओशो ने बरसों पहले अंग्रेजी के संबंध में जो कहा था, वह अब इतने वर्षों बाद हमारे सामने आ रहा है । सम्प्रति सलमान ~~xxxx xxx~~ खदी ने जो एक विवादास्पद स्टेटमेण्ट दिया था उसके संदर्भ में "टाइम्स आफ इण्डिया" में निखत काज़मी का एक सर्वेक्षण प्रकाशित हुआ था, उसमें किरण नागरकर का एक वक्तव्य गौरतलब है :

"धेर आर ओन्ली टु काइण्ड्स आफ पिपल इन द वर्ल्ड, थोज हू हेव इंग्लिश एण्ड थोज हू डोण्ट. थोज हू हेव इंग्लिश आर द हेव्स ( ), एण्ड थोज हू डोण्ट आर द हेव नोट्स ( ) . "[44]

संभोग से समाधि की ओर :

ओशो की यह एक अत्यंत विवादास्पद एवं छद्म-बहुचर्चित पुस्तक है । लोग केवल उसके शीर्षक से ही भड़क उठते हैं, और उसके आधार पर ही ओशो को सेक्स-गुरु और न जाने कैसे-कैसे विशेषण देते हैं । ऊपर "छद्म-बहुचर्चित" शब्द का प्रयोग साभिप्राय हुआ है । पुस्तक की चर्चा हुई है, पर केवल ऊपर-ऊपर से । उसकी जो गहरी छानबिन होनी चाहिए, नहीं हुई है । लोगों का ध्यान उसके भड़कीले शीर्षक पर जाता है, पर उप-शीर्षक पर नहीं जाता । उप-शीर्षक दिया गया है : जीवन-ऊर्जा रूपांतरण का विज्ञान ।

वस्तुतः यहां अधिकांश लोग ओशो के मूल अभिप्राय को ही नहीं समझे हैं । हमारे यहां होता क्या है कि लोग सेक्स का बाह्यतः विरोध करते हैं, परंतु चौबीसों घण्टों उसमें लिप्त रहते हैं । बाहर से नाक-भौं सिकोड़ते हैं, परंतु अंदर से कुत्तों की तरह टूट पड़ते हैं । ओशो कहते हैं, सेक्स से भागो मत, उसे निन्दनीय न बनाओ, उसे घृणा की नज़र से न देखो, उसे समझो, समझकर भोगो और भोगकर उससे ऊपर उठ जाओ । उसमें लिप्त मत रहो । सेक्स की ऊर्जा का रूपांतरण करो । शक्ति के इस स्रोत का उपयोग करो । जिसे सूफी संत इश्के मजाजी से इश्के-हकीकी की यात्रा कहते हैं, उसे ही ओशो ने "संभोग से समाधि तक" में कहा है । "संभोग" पर रुक नहीं जाना है, "संभोग" से चुक नहीं जाना है, बल्कि उससे ऊपर उठकर "समाधि" की मंज़िल तक पहुंचना है । "संभोग से आप उस दिन मुक्त होंगे, जिस दिन आपको समाधि बिना संभोग के मिलना शुरू हो जायेगी । उस दिन संभोग से आप मुक्त हो जायेंगे, सेक्स से मुक्त हो जायेंगे । "[45]

प्रस्तुत ग्रंथ कुल अठारह अध्यायों में विभक्त हैं : "संभोगः परमात्मा की सृजन-ऊर्जा", "संभोगः अहं शून्यता की झलक", "संभोगः समय शून्यता की झलक", "समाधि : अहं-शून्यता, समय शून्यता का अनुभव", समाधि : संभोग-ऊर्जा का आध्यात्मिक नियोजन", म "यौन : जीवन का ऊर्जा-आयाम", युवक और यौन, प्रेम और विवाह, जनसंख्या विस्फोट, विद्रोह क्या है, युवक कौन, युवा चित्त का जन्म, नारी और क्रांति, "नारीःएक और आयाम", "सिद्धान्त, शास्त्र और वाद से मुक्ति", "भीड़ से, समाज से — दूसरों से मुक्ति", दमन से मुक्ति, "न भोग, न दमन — वरन् जागरण" ।

प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका विश्वविख्यात कवयित्री, लेखिका एवं राज्यसभा सदस्या अमृता प्रीतम ने लिखी है । अपनी भूमिका में

वे लिखती हैं : " मन की मिट्टी का ज़रखेज होना ही उसका मोक्ष है, और उस मिट्टी में पड़े हुए बीज का फूल बनकर खिलना ही उसका मोक्ष है ... मानना होगा कि श्री रजनीश ही यह पहचान दे सकते थे, जिन्हें चिंतन पर भी अधिकार है, और वाणी पर भी अधिकार है .... सिर्फ एक बात और कहना चाहती हूं अपने अंतर के अनुभव से — उस व्यथा की बात, जो अंकुर बनने से पहले एक बीज की व्यथा होती है ....

मेरा सूरज बादलों के महल में सोया हुआ है
जहां कोई सीढ़ी नहीं, कोई खिड़की नहीं
और वहां पहुंचने के लिए —
सदियों के हाथों ने जो डंडी बनाई है
वो मेरे पैरों के लिए बहुत संकरी है ...

मैं मानती हूं कि हर चिंतनशील साधक के लिए, हर बना हुआ रास्ता संकरा होता है। अपना रास्ता तो उसे अपने पैरों से बनाना होता है। लेकिन श्री रजनीश इस रहस्य को सहज मन से कह पाए, इसके लिए हमारा युग उन्हें धन्यवाद देता है। " 46

इस पुस्तक में ओशो रजनीश ने कहा है : " मैं आपसे कहना चाहता हूं कि काम दिव्य है, डिवाइन है। सेक्स की शक्ति परमात्मा की शक्ति है। इसलिए तो उससे ऊर्जा पैदा होती है और नये जीवन विकसित होते हैं। वही तो सबसे रहस्यपूर्ण शक्ति है। वही तो सबसे ज्यादा मिस्टीरियस फोर्स है। उससे दुश्मनी छोड़ दें। अगर आप चाहते हैं कि कभी आपके जीवन में प्रेम की वर्षा हो जाये तो उससे दुश्मनी छोड़ दें। उसे आनंद से स्वीकार करें। उसकी पवित्रता को स्वीकार करें। उसकी धन्यता को स्वीकार करें और खोजें। उसमें और गहरे और गहरे जायें तो आप हैरान हो जायेंगे। जितनी पवित्रता से काम की स्वीकृति हो, उतना ही काम पवित्र होता चला जाता है। जब कोई अपनी पत्नी के

पास ऐसे जायें , जैसे कोई मंदिर के पास जाता है ; जब कोई पत्नी अपने पति के पास ऐसे जायें , जैसे सच में कोई परमात्मा के पास जाता है — क्योंकि जब दो प्रेमी काम से निकट आते हैं , जब वे संभोग से गुज़रते हैं , तब सच में ही वे परमात्मा के मंदिर ही से गुजरते हैं । वही परमात्मा काम कर रहा है , उनकी उस निकटता में । वही परमात्मा की सृजन-शक्ति काम कर रही है । " [47]
यहां ओशो की एक बात अत्यंत विचारणीय है । भोजन , हवा , पानी ये सब शरीर के गुणधर्म है और उन्हें हम सहजता से स्वीकार करते हैं । भोजन करना कोई गंदा काम नहीं है । पानी पीना कोई गंदा काम नहीं है । और इसलिए हम उसकी पवित्रता और शुद्धता का ख्याल रखते हैं । ठीक उसी तरह हमें काम-क्षुधा को भी सहजतया लेना चाहिए । उसे भी शुद्ध और पवित्र मानना चाहिए । असल में होता क्या है कि जिस कार्य को हम आनंद-पूर्वक करना चाहते हैं , उसके सामने पाप और अपराध-बोध और गोपनीयता की दीवार खड़ी कर देते हैं । जिसके कारण हमारा मानस विकृत हो जाता है । हर स्त्री को माता के रूप में देखने के बजाय हम मादा के रूप में देखने लगते हैं ।

वस्तुतः देखा जाये तो मनुष्य की कामुकता गलत शिक्षाओं का परिणाम है । सेक्स की बात करने से हम डरते हैं और सोचते हैं कि उस पर बात करने से लोग कामुक हो जायेंगे , विकृत हो जायेंगे । पर यह भ्रम है । यह शत-प्रतिशत भ्रम है । पृथ्वी उस दिन ह सेक्स से मुक्त होगी , जब हम सेक्स के संबंध में सामान्य स्वस्थ बातचीत करने में समर्थ हो जायेंगे ।[48]वस्तुतः सेक्स हमें "टाइमलेसनेस" और "इगोलेसनेस" की ओर ले जाता है और ये दोनों अभिलक्षण समाधि-अवस्था के हैं । ओशो इस बारे में कहते हैं : " मनुष्य के सामान्य जीवन में सिवाय सेक्स की अनुभूति के

वह कभी भी अपने गहरे से गहरे प्राणों में नहीं उतरता है। और किसी क्षण में कभी गहरे नहीं उतरता है। दुकान करता है, धंधा करता है, यश कमाता है, पैसे कमाता है, लेकिन एक अनुभव काम का, संभोग का, उसे गहरे से गहरे ले जाता है और उसकी उस गहराई में दो बातें घटती हैं। एक — संभोग के अनुभव में अहंकार विसर्जित हो जाता है, "इगोलेसनेस" पैदा हो जाती है। एक क्षण के लिए अहंकार नहीं रह जाता, एक क्षण को यह याद भी नहीं रहता कि मैं हूं। क्या आपको पता है, धर्म के श्रेष्ठतम अनुभव में, "मैं" बिलकुल मिट जाता है, अहंकार बिलकुल शून्य हो जाता है। सेक्स के अनुभव में क्षण भर को अहंकार मिटता है। लगता है कि हूं या नहीं। एक क्षण को विलीन हो जाता है "मेरापन" का भाव। दूसरी घटना घटती है: एक क्षण के लिए समय मिट जाता है, "टाइमलेसनेस" पैदा हो जाती है। जीसस ने कहा है समाधि के संबंध में: "देर शैल बी टाइम नो लोंगर"। समाधि का जो अनुभव है, वहां समय नहीं रह जाता है। वह कालातीत है। समय बिलकुल विलीन हो जाता है। न कोई अतीत है, न कोई भविष्य — शुद्ध वर्तमान रह जाता है। सेक्स के अनुभव में यह दूसरी घटना घटती है। न कोई अतीत रह जाता है, न कोई भविष्य। समय मिट जाता है, एक क्षण के लिए समय विलीन हो जाता है। यह धार्मिक अनुभूति के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व है — इगोलेसनेस, टाइमलेसनेस।" 49

"युवक और यौन" नामक अध्याय में ओशो यह विश्लेषित करते हैं कि वर्जनाओं के कारण मनुष्य ज्यादा "सेक्सुअल" हो गया है। एक स्थान पर वे कहते हैं:

"यह जो सेक्स इतना महत्वपूर्ण हो गया है वर्जना के कारण। वर्जना की तख्ती लगी है। उस वर्जना के कारण यह इतना महत्वपूर्ण हो

हो गया कि सारे मन को घेरे रहता है। सारा मन सेक्स के इर्द-गिर्द घूमने लगता है। फ्रायड ठीक कहता है कि मनुष्य का मन सेक्स के आसपास ही घूमता है। लेकिन वह यह गलत कहता है कि सेक्स महत्वपूर्ण है, इसलिए घूमता है। नहीं, घूमने का कारण है वर्जना, इनकार, विरोध, निषेध। घूमने का कारण है हजारों साल की परंपरा। सेक्स को वर्जित, गर्हित, निंदित सिद्ध करने वाली परंपरा इसके लिए जिम्मेवार है। सेक्स को इतना महत्वपूर्ण बनाने वालों में साधु-महात्माओं का हाथ है, जिन्होंने तख्ती लटकाई है वर्जना की। यह बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा, लेकिन यही सत्य है। और कहना जरूरी है कि मनुष्य जाति को सेक्सुआलिटी की, कामुकता की तरफ ले जाने का काम महात्माओं ने ही किया है। जितने जोर से वर्जना लगाई है उन्होंने, आदमी उतने जोर से आतुर होकर भागने लगा है। इधर वर्जना लगा दी, उधर उसका परिणाम यह हुआ है कि सेक्स आदमी की रग-रग से फूटकर निकल पड़ा है। थोड़ी खोजबीन करो, ऊपर की राख हटाओ, भीतर सेक्स मिलेगा। उपन्यास, कहानी, महान से महान साहित्यकार की जरा राख झाड़ो, भीतर सेक्स मिलेगा। ... इसका बुनियादी कारण यह है कि सेक्स को आज तक स्वीकार नहीं किया गया। जिससे जीवन का जन्म होता है, जिससे जीवन के बीज फूटते हैं। जिससे जीवन के फूल आते हैं, जिससे जीवन की सारी सुगंध है, सारा रंग है। जिससे जीवन का सारा नृत्य है, जिसके आधार पर जीवन का पहिया घूमता है, उसको स्वीकार नहीं किया गया है। जीवन के मौलिक आधार को अ अस्वीकार किया गया है। जीवन में जो केन्द्रीय है, परमात्मा जिसे सृष्टि का आधार बनाए हुए हैं — चाहे फूल हो, चाहे पक्षी हो, चाहे बीज हों, चाहे पौधे हों, चाहे मनुष्य हो — सेक्स जो कि जीवन के जन्म का मार्ग है, उसको ही अस्वीकार कर दिया। • 50

सेक्स की इस अस्वीकृति के कारण वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया। मनुष्य के चित्त को उसने सब ओर से घेर लिया। मनुष्य सेक्सुअल हो गया। सीधे जानने के उपाय न रहे तो मनुष्य ने आड़े-टेढ़े मार्ग ढूंढ निकाले। उसके कारण वह अनैतिक एवं अश्लील एवं गंदा हो गया। फिल्म, पोस्टर, किताबें इन सबके गंदे होने का यही कारण है। फिल्म देखने से मनुष्य गंदा नहीं होता, वह गंदा हो गया है, विकृत हो गया है, इसलिए गंदी फिल्में बनती हैं। पुरुषोत्तमदास टण्डन तो यहां तक कहा करते थे कि खजुराहो और कोणार्क के मंदिरों पर मिट्टी पोतकर उनकी प्रतिमाओं को ढंक देना चाहिए। और मजे की बात यह है कि तुम जितना ढंकते चले जाओगे, आदमी उतना अधिक गंदा और विकृत होता जायेगा।

"नारी और क्रांति" नामक अध्याय में हम ओशो के मौलिक, रोचक एवं क्रांतिकारी विचारों को पढ़ सकते हैं। मनुष्यता का अब तक का इतिहास पुरुषों का रहा है, आक्रमकता का रहा है, हिंसा का रहा है, लेने का रहा है, मिटाने का रहा है, और इन सबके कारण विश्व विनाश के कगार पर आकर खड़ा हो गया है। अब विश्व को कोई बचा सकता है, इसमें कोई क्रांति ला सकता है, तो वह नारी ही ला सकती है। इस संदर्भ में ओशो कहते हैं :

"लेकिन स्त्री का पूरा व्यक्तित्व, देनेवाला व्यक्तित्व है। और अब तक जो दुनिया हमने बनायी है, वह लेनेवाले व्यक्तित्व की है। लेनेवाले व्यक्तित्व के कारण पूंजीवाद है। लेनेवाले व्यक्तित्व के कारण साम्राज्यशाही है। लेनेवाले व्यक्तित्व के कारण युद्ध है, हिंसा है। क्या हम देनेवाले व्यक्तित्व के आधार पर कोई समाज का निर्माण कर सकते हैं? यह हो सकता है। लेकिन यह पुरुष नहीं कर सकेगा। यह स्त्री कर सकती है। और स्त्री सजग हो, कांशस हो, जागे तो कोई भी कठिनाई नहीं। एक क्रांति, बड़ी से बड़ी क्रांति दुनिया में स्त्री को लानी है। वह यह, एक

प्रेम पर आधारित — देनेवाली संस्कृति ; जो मांगती नहीं , इकट्ठा नहीं करती , देती है । ऐसी एक संस्कृति निर्मित करनी है । ऐसी संस्कृति के निर्माण के लिए जो भी किया जा सके , वह सब .. उस सबसे बड़ा धर्म स्त्री के सामने आज कोई और नहीं । ... पुरुष के संसार को बदल देना है आमूल । स्त्री के हृदय में जो छिपा है , उसकी छाया को फैलाना है । उस वृक्ष को बड़ा करना है , तो शायद एक अच्छी मनुष्यता का जन्म हो सकता है । स्त्री के जीवन में चेतना की क्रांति सारी मनुष्यता के लिए क्रांति बन सकती है । कौन करेगा यह ? स्त्रियां न सोचतीं , न विचारतीं । स्त्रियां न इकट्ठा हैं , न कोई सामूहिक आवाज़ है , न उसकी कोई आत्मा है । शायद पुरानी पीढ़ी नहीं कर सकेगी । लेकिन नयी पीढ़ी की लड़कियां कुछ अगर हिम्मत जुटायेंगी और फिर पुरुष होने की नकल और बेवकूफी में नहीं पड़ेंगी तो यह क्रांति निश्चित हो सकती है । " 5।

शिक्षा में क्रांति :

ओशो रजनीश का यह एक बहुत ही मूल्यवान ग्रंथ है । इसमें उनके शिक्षा के विविध आयामों तथा इससे सम्बद्ध मूलभूत समस्याओं पर दिये गये व्याख्यान , चर्चाएं एवं वार्ताएं {साक्षात्कार} संकलित हैं । इसकी भूमिका सुप्रसिद्ध लेखक , कवि एवं वरिष्ठ पत्रकार श्री सुरेश नीरव ने लिखी है । निम्नलिखित 31 अध्याय उसमें संकलित हैं :

नये मनुष्य के नये जन्म की दिशा , धर्म और विज्ञान , शिक्षा और धर्म , "शिक्षक , समाज और क्रांति " , प्रेम-विवाह और बच्चे , युक्रांद क्या है ? , नारी और क्रांति , अज्ञात के नये आयाम , प्रेम-केन्द्रित शिक्षा , विध्वंसी महत्वाकांक्षा , अशांति का बीज-मंत्र , विद्रोह की आग , संदेह की ज्योति , साध्य और साधन ,

बोध से रूपांतरण , अखंड जीवन का सूत्र , जटिल धारणाएं नहीं सरल जीवन्त अनुभव , महत्वाकांक्षारहित अतुलनीय प्रेम , "निराग्रही अन्वेषक चित्त की खोज , जीवन-विरोधों में लयबद्धता का बिन्दु , मनुष्य के आमूल रूपांतरण की प्रक्रिया , "मनोविश्लेषण , मनोजागरण और मनोसाधना " , नारी की मुक्ति और शांति , अंधविश्वासों से मुक्ति , शक्ति-नियोजन , शिक्षकों की खोज , अंकुरित होने की कला , कम्यून-जीवन , "नयी दिशा-नया बोध " , बोध का जागरण, शिक्षा : नया धर्म । इसमें कुछ निबंध ऐसे भी संकलित हैं जो उनके अन्य ग्रंथों में भी आ गये हैं , जैसे -- नारी और क्रांति , नारी की मुक्ति और शांति आदि ।

हमारे विश्वविद्यालयीन शिक्षा की अर्थxxx कमजोरियों , खामियों , उसकी एकांगिता के संदर्भ में अपने क्रांतिकारी विचार यहां ओशो ने व्यक्त किये हैं :

"विश्वविद्यालय शिक्षा नहीं देते , संस्कार देते हैं । संस्कार , जो कि कारागृह बन जाते हैं । शिक्षा तो मुक्तिदायी है । ज्ञान तो वही है जो विमुक्त करे । और जिसे आज हम शिक्षा कह रहे हैं उसका विमुक्ति से क्या संबंध ? बंधन तो बनाती है बहुत , मुक्ति तो ज़रा भी पास नहीं लाती । विश्वविद्यालय विचार देते हैं और मुक्ति आती है निर्विचार से । विश्वविद्यालय से कितनी ही उपाधियां प्राप्त कर ली जाएं , वे उपाधि के दूसरे अर्थ में ही उपाधि हैं -- बीमारी के अर्थ में । उनसे स्वास्थ्यलाभ नहीं होता । उनसे अहंकार तो अर्जित होता है । अहंकार पर सजावट चढ़ जाती है , अहंकार पर फूलमालाएं लग जाती हैं ; लेकिन भीतर का खोखलापन , भीतर का थोथापन न मिटता है , न मिट सकता है । उसे मिटाने की तो एक ही कला है । उस कला को बाहर से सिखाने का कोई उपाय नहीं है । वह कला तो सत्संग में सहज स्फुरित होती है ।

शिक्षा जिसे तुम कहते हो विश्वविद्यालय की , वहां सत्संग नहीं है । वहां बंधे हुए सिद्धान्त , धारणाएं , शब्द , शास्त्र , कोरे मनों के ऊपर थोपे जा रहे हैं । विद्यार्थी आता है कोरे कागज की तरह , और जब विश्वविद्यालय से लौटता है गुदा कागज होता है । कोरे कागज का तो कुछ भी मूल्य है , गुदे कागज का तो कोई मूल्य नहीं — बस रद्दी में बेच दो , जो मिल जाये सो बहुत है । ... सत्संग में कागज फिर कोरा होता है । सद्गुरु कुछ सिखाता नहीं , मिटाता है । सद्गुरु कुछ देता नहीं , छीन लेता है । सद्गुरु सिद्धान्त नहीं देता ; तुम्हारी जो पकड़ है सिद्धान्तों पर , शब्दों पर , शास्त्रों पर , उसे शिथिल करता है । और यह सब होता है , किसी सिखावन के द्वारा नहीं , सिर्फ सद्गुरु के पास बैठते-बैठते ; उसके रंग में रंगते-रंगते , उसके रस में डूबते-डूबते , उसके गीत को सुनते-सुनते , किसी दिन , किसी सौभाग्य के क्षण में बस झरोखा खुल जाता है । " 52

श्री सुरेश नीरव ने इस ग्रंथ की भूमिका में लिखा हैx है : " शिक्षा सिद्धान्त नहीं है । शिक्षा अतीत का विधान भी नहीं । शिक्षा सिर्फ प्रार्थनाएं नहीं है । शिक्षा के नाम पर जो शब्द पाठ्यक्रम की पगडंडियों पर चल रहे हैं , वह खुद सड़क बन रहे हैं । शिक्षा तो "अनुभूत सत्य " से साक्षात्कार करने की अनवरत ललक है , आगत से बतियाने की निष्ठावान चेष्टा है , शिक्षा तो वर्तमान का वह अक्ष है , जिस पर सारे परिवर्तनों का पहिया घूमता है । शिक्षा तो वह बिन्दु है , हमारे भीतर , जहां रोज ही तो नया कुछ घटता है । शिक्षा प्रयोग है , शास्त्र नहीं । प्रयोग भविष्यमुखी होते हैं — यात्रा करते हैं अंधेरे से उजाले की ओर । शास्त्र अतीतधर्मी होते हैं । परि-भाषाओं के ठहराव है शास्त्र । शास्त्रों में क्रान्ति xxxx हो चुकी होती है । भविष्य में क्रान्ति के सपने हुआ करते हैं । ओशो रजनीश शिक्षा के जिस आयाम को उद्घाटित करते हैं , वहां क्रांति न तो

किसी स्वप्नजीवी की अघोषित टापू की नागरिकता का "वीसा" है और न ही अतीत की शौर्य गाथा । इस शिक्षा में तो आदमी रोज ही क्रांति में जीता है । शिक्षा अहसास की नीली झील की वह लयात्मक तरलता है जिसकी कल-कल हम रोज ही सुनते हैं । संस्कारों के जड़ बनावटी तेवरों और छद्म पूर्वाग्रहों से मुक्त कर स्वच्छंद झरने सा उन्मुक्त बहने देने का मानसिक आमंत्रण है , यह कृति । सोच की बूढ़ी अस्थियों में संभावना का नया सूर्योदय है — "शिक्षा में क्रांति " । फूलों की लिपि में उत्सव के नये अर्थ लिखता सूरज खूब साफ चमक रहा है । इस भोर की मुलायम धूप को आइये हम सब अपनी धमनियों में महसूसें और किरण-किरण होकर खुद ही धूप हो जाएं । रोशनी की दिव्य यात्रा का कितना सात्त्विक आमंत्रण है ये । " 53

इस ग्रंथ के "शिक्षक , समाज और क्रांति " नामक व्याख्यान में ओशो ने अपने कुछ क्रांतिकारी और मौलिक विचारों को अभिव्यक्ति दी है :

" संबंध क्या है शिक्षक और समाज के बीच आज तक ? संबंध यह है कि शिक्षक गुलाम है और समाज मालिक है । शिक्षक से समाज काम कौन-सा लेता है ? शिक्षक से समाज काम यह लेता है कि उसकी पुरानी ईर्ष्याएं , पुराने द्वेष , उसके पुराने विचार वह सब जो हजारों वर्ष से लाते हैं मनुष्य के मन पर , शिक्षक नये बच्चों के मन में उनको प्रविष्ट करा दे । मरे हुए लोग , मरते जानेवाले लोग जो वसीयत छोड़ गये हैं , चाहे वह ठीक हो गलत , उसे वह नये बच्चों के मन में प्रवेश करा दें । समाज शिक्षक से यह काम लेता रहा है और शिक्षक इस काम को करता रहा है , यह आश्चर्य की बात है । .... इस कारण समाज शिक्षक का आदर भी करता है , आदर करने की प्रवृत्ति भी दिखलाता है । क्योंकि बिना शिक्षक की खुशामद किये , बिना शिक्षक को आदर दिए शिक्षक से कोई काम

लेना असंभव है । इसलिए कहा जाता है कि शिक्षक जो है वह गुरु है , आदरणीय है , उसकी बात मानने योग्य है , उसका सम्मान किया जाने योग्य है । क्यों ? क्योंकि जो समाज अपने बच्चों में अपने मन की धारणाओं को छोड़ जाना चाहता है , इसके सिवाय उसको कोई मार्ग नहीं । .... पुरानी पीढ़ी की जो-जो अंधश्रद्धाएं हैं वह पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी पर थोप देना चाहती है । अपने शास्त्र , अपने गुरु , सब थोप जाना चाहती है । यह कौन करेगा ? तो यह काम वह शिक्षक से लेता है और इसका परिणाम क्या होगा ? " [54]

इसी व्याख्यान में वे एक अनोखी बात करते हैं : " अभी कुछ दिन पहले शिक्षकों की एक विराट सभा में बोलने मैं गया था , शिक्षक-दिवस था । तो मैंने उनसे कहा कि एक शिक्षक यदि राष्ट्रपति हो जाये तो इसमें शिक्षक का सम्मान क्या है ? इसमें कौन से शिक्षक का सम्मान है ? मेरी समझ में , एक राष्ट्रपति शिक्षक हो जाये तब तो शिक्षक का सम्मान भी समझ में आता है । लेकिन एक शिक्षक राष्ट्रपति हो जाये इसमें शिक्षक का सम्मान कौन-सा है ? एक राष्ट्रपति शिक्षक हो जाये और कह दे कि यह व्यर्थ है और मैं शिक्षक होना चाहता हूं और शिक्षक होना आनंद है , तब तो हम समझेंगे कि शिक्षक का सम्मान हो रहा है ।" [55] अभिप्राय यह कि हर विषय पर , हर मसले पर , ओशो का चिंतन एक नवीनता को लेकर चलता है । वे गतानुगतिकता के परम विरोधी है । छगन ने कहा , इसलिए मगन कह रहा है और इसलिए जगन को यह बात मान लेनी चाहिए , इस थ्योरी के प्रखर विरोधी थे । और शिक्षा में तो यह हरगिज नहीं होना चाहिए ।

हमारी प्रवर्तमान शिक्षा-पद्धति हमारे अच्छे जीवन-मूल्यों को खत्म कर रही है । वह हमें प्रेम से दूर ले जा रही है । वह हमारे में

ईर्ष्या-भाव पैदा कर रही है । सीखना प्रेम का अनुसरण करना है । लेकिन प्रेम तो हमें सिखाया नहीं जाता । हमारी शिक्षा का उससे कोई संबंध नहीं है । इस संदर्भ में ओशो कहते हैं :

" इसलिए अक्सर यह होता है कि अगर आपने साहित्य पढ़ा है और विश्वविद्यालय में तो विश्वविद्यालय से निकलने के बाद आप फिर कभी साहित्य को उठाकर न देखेंगे, क्योंकि विश्वविद्यालय आपको साहित्य से इतना उबा देंगे, इतना बोर कर देंगे, इतना घबरा देंगे कि फिर साहित्य उठाकर देखने वाले नहीं हैं । अगर आपने विश्वविद्यालय में कविताएं पढ़ी हैं तो आपका जीवन भर के लिए कविता का प्रेम और आनंद नष्ट हो जायेगा । इसलिए नष्ट हो जायेगा कि वह अहंकार की दौड़ में पढ़ी गयी थीं, परीक्षाएं पास करने के लिए पढ़ी गयी थीं । आगे निकलने के लिए पढ़ी गयी थीं । काव्य से कोई प्रेम पैदा नहीं हुआ था । .... और इसलिए अक्सर यह होता है कि हमारी सारी शिक्षा प्रतिभा को नष्ट कर देती है । इमर्सन ने एक युवक की तारीफ़ में एक बात कही थी । वह गांव का पहला ग्रेजुएट था । इमर्सन से लोगों ने कहा कि आप भी उसके सम्मान में दो शब्द कहें । उन्होंने कहा, मैं महीने भर उस युवक को जांचूं, परखूं, फिर कुछ कह सकता हूं । महीने भर बाद वे उस समारोह में सम्मिलित हुए और उन्होंने कहा, मुझे यह युवक बहुत पसंद आया । और मैं इसकी तारीफ करता हूं । यह अद्भुत है । और क्यों तारीफ करता हूं ? उन्होंने कहा, इसलिए तारीफ करता हूं कि यह विश्वविद्यालय की शिक्षा के बावजूद भी अपनी प्रतिभा को बचाने में समर्थ रह सका है । इसलिए मैं इसकी तारीफ करता हूं ।" [56]

यहां ओशो ने हमारी उच्च शिक्षा-पद्धति पर जो व्यंग्य किया है वह बड़ा पैना है । कविता पर पढ़ने के बाद व्यक्ति कविता लिखने की प्रतिभा खो बैठता है । वस्तुतः होना तो यह चाहिए

कि कविता पर पढ़ने के बाद आदमी अच्छी कविता लिखे, बेहतर कविता लिखे। परंतु ऐसा होता नहीं है। यह भी एक आश्चर्य की बात है कि दुनिया में अच्छी कविता उन लोगों ने लिखी है, जो नहीं जानते थे कि कविता क्या है ?

"जीवंत शिक्षकों की खोज" इस विषय पर दिए व्याख्यान में शिक्षक की आधुनिक विशेषता और संभावना को रेखांकित करते हैं :

"अब सूत्र बदलना पड़ेगा। अब तो जो विनम्र है, वही सिखा सकता है। असल में, विनम्र हुए बिना कोई सिखा नहीं सकता। और मेरा मानना है कि जिस दिन सिखानेवाला विनम्र होगा उसी दिन सीखनेवाला भी विनम्र हो सकता है। क्योंकि सिखानेवाला ही विनम्र न हो, तो सीखनेवाला विनम्र कैसे हो सकता है ? सिखानेवाला अब तक बहुत अविनम्र था। अगर हम पुराने शिक्षक की कल्पना करें, तो वह बहुत इगोसेंट्रिक है, वह बहुत अहंकार से भरा हुआ है। उसके अहंकार के आसपास उसने पैर छूने से लेकर सब तरफ से नयी पीढ़ी को झुकाने का काम किया था। .... पुराने शिक्षक का महत्वपूर्ण काम यह था कि वह बच्चों को ज्ञान दे दे। नये शिक्षक का महत्वपूर्ण काम सिर्फ ज्ञान देना न होगा, बल्कि अज्ञात का बोध कराना भी होगा। वह जो "अननोन" है। क्योंकि बच्चे कल वहां होंगे जहां हम कभी भी नहीं रहे। और अगर हमने उन्हें सिर्फ ज्ञान ही दिया जो कि अतीत का है, तो हम उन्हें भविष्य की रेत पर खड़े होने में समर्थ नहीं बना पायेंगे। शिक्षक के सामने एक नया काम आ गया है कि वह अज्ञात को ~~xxxx~~ बोध दे। वह न केवल इतना बताये कि हम क्या जानते हैं, वह यह भी बताये कि हम जो भी जानते हैं वह कल व्यर्थ हो जायेगा, और नये जानने के द्वार खुल जायेंगे। इसलिए पुराना शिक्षक एक सर्टेंटी में था, एक निश्चय में था। नया शिक्षक एक अनिश्चय में है। वह निश्चित नहीं हो सकता। और अगर

निश्चित होता है , तो मनुष्य को गति नहीं दे सकता । पुराना शिक्षक कहता था , जो मैं कहता हूं वह ठीक है और तुम्हारा काम है कि मान लो । नये शिक्षक को बहुत रिलेटिविस्ट होना पड़ेगा , उसे सापेक्षवादी होना पड़ेगा । उसे कहना पड़ेगा कि शायद जो मैं कहता हूं वह ठीक है । अब तक ठीक है , कल गलत भी हो सकता है । पुराना शिक्षक कहता था , जो मैं कह रहा हूं , ठीक है । तुमने जो समझा दिया , उसको ठीक सिद्ध करना । नये शिक्षक को कहना पड़ेगा , जो मैं कह रहा हूं , यह ठीक है । भगवान से प्रार्थना है कि तुम उसे अगर गलत सिद्ध कर सको तो हित होगा मनुष्य का , आगे गति होगी ।" 57

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ओशो का चिंतन अपने समय से काफी आगे था । वे सोच की जड़ता में नहीं , उसके लचीलेपन में विश्वास करते हैं । जड़ता चाहे शास्त्र की हो , चाहे धर्म की , चाहे संसार के किसी सम्मान्य या पूजनीय व्यक्ति की , वे उसे नकारते थे ।

कृष्ण-स्मृति :

"कृष्ण-स्मृति" कृष्ण के बहुआयामी रंगारंग व्यक्तित्व पर ओशो द्वारा दी गयीं 21 वार्ताओं का संकलन है । इसके साथ एक प्रवचन भी है जो उन्होंने नव-संन्यास पर दिया था । इसका संकलन माँ अंतर शून्यो तथा संपादन स्वामी योग प्रताप भारती ने किया है । इस ग्रंथ की भूमिका लब्धप्रतिष्ठ कवि एवं लेखक डा. दामोदर खड़से ने लिखी है ।

"महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपने समय से बहुत पहले पैदा हो जाता है । कृष्ण अपने समय के कम से कम पांच हजार वर्ष पहले पैदा हुए । अतीत कृष्ण को समझने में योग्य नहीं हो सका । शायद आनेवाले भविष्य में कृष्ण को समझने में हम योग्य हो सकेंगे । जिसे हम समझने में योग्य नहीं हो पाते , उसकी हम पूजा करने लगते हैं । लेकिन अब वक्त करीब आ गया है , जब कृष्ण की पूजा से अर्थ

नहीं होगा, कृष्ण को जीना शुरू हो सकेगा। कृष्ण को जिया जा सकेगा। .... कृष्ण इस पृथ्वी के पूरे जीवन को पूरा ही स्वीकार करते हैं। वे किसी परलोक में जीनेवाले व्यक्ति नहीं, इस पृथ्वी पर, इसी लोक में जीनेवाले व्यक्ति हैं। बुद्ध, महावीर का मोक्ष इस पृथ्वी के पार कहीं दूर है। कृष्ण का मोक्ष इसी पृथ्वी पर, यहीं और अभी है।" 58

त्यागवादी धर्मों की आलोचना करते हुए ओशो कहते हैं: "त्यागवादी धर्म की कोई बात भविष्य के लिए सार्थक नहीं है। भविष्य में दुख कम होता जायेगा और सुख बढ़ता जायेगा। इसलिए मैं सोचता हूं कि कृष्ण की उपयोगिता रोज़-रोज़ बढ़ती जानेवाली है। भविष्य के लिए कृष्ण की बड़ी सार्थकता है। ... अतीत का सारा धर्म दुखवादी था। कृष्ण को छोड़ दें तो अतीत का सारा धर्म उदास, आंसुओं से भरा हुआ था। हंसता हुआ धर्म, जीवन को समग्र रूप में स्वीकार करनेवाला धर्म अभी पैदा होने को है। भविष्य का धर्म जीवन को, जीवन के रस को स्वीकार करनेवाला, आनंद से अनुग्रह से नाचनेवाला, हंसनेवाला धर्म होनेवाला है। ... कृष्ण अकेले ही ऐसे व्यक्ति हैं जो धर्म की परम गहराइयों ऊंचाइयों पर होकर भी गंभीर नहीं है, उदास नहीं है। कृष्ण अकेले ही नाचते हुए व्यक्ति हैं — हंसते हुए, गीत गाते हुए। कृष्ण अकेले ही इस जीवन को पूरा ही स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए इस देश ने और सभी अवतारों को आंशिक अवतार कहा है, सिर्फ कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा है।" 59

इस ग्रंथ की भूमिका में डा. दामोदर खड़से लिखते हैं: "ओशो की प्रखर आंखों ने कृष्ण को अपने वर्तमान के लिए देखा। दुख, निराशा, उदासी, वैराग्य जैसी बातें कृष्ण ने पृथ्वी पर नहीं कीं। पृथ्वी पर जीनेवाले उल्लास, उत्सव, आनंद, गीत, नृत्य, संगीत को कृष्ण ने विस्तार दिया। कृष्ण ने इस संसार की सारी चीजों

को उनके वास्तविक अर्थों ' में ही स्वीकार किया । .... कृष्ण के बहुआयामी व्यक्तित्व और रहस्यपूर्ण कृतित्व की व्याख्या ओशो ने सहजता और सरलता से की है । कृष्ण को देखने की उनकी दृष्टि सचमुच ऐसा विस्तार देती है , जो मात्र तुलना नहीं है । कृष्ण कुशलता से चोरी कर सकते हैं , महावीर एकदम बेकाम चोर साबित होंगे । कृष्ण कुशलता से युद्ध कर सकते हैं , बुद्ध न लड़ सकेंगे । जीसस की हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि वे बाँसुरी बजा सकते हैं , लेकिन कृष्ण सूली पर चढ़ सकते हैं । ' 60

प्रस्तुत ग्रंथ में ओशो के 22 व्याख्यान या वार्ताएँ हैं : हंसते व जीवंत धर्म के प्रतीक कृष्ण , इहलौकिक जीवन के समग्र स्वीकार के प्रतीक कृष्ण , अनुपार्जित सहज शून्यता के प्रतीक कृष्ण , स्वधर्म-निष्ठा के आत्यन्तिक प्रतीक कृष्ण , ' अकारण ' के आत्यन्तिक प्रतीक कृष्ण , जीवन के वृहद् जोड़ के प्रतीक कृष्ण , जीवन में महोत्सव के प्रतीक कृष्ण , क्षण-क्षणजीने के महाप्रतीक कृष्ण , विराट जागतिक रास-लीला के प्रतीक कृष्ण , स्वस्थ राजनीति के प्रतीक पुरुष कृष्ण , मानवीय पहलूयुक्त भगवत्ता के प्रतीक कृष्ण , साधनारहित सिद्धि के परम प्रतीक कृष्ण , अचिंत्य धारा के प्रतीक बिंदु कृष्ण , अकर्म के पूर्ण प्रतीक कृष्ण , अनंत सागररूप चेतना के प्रतीक कृष्ण , सीखने की सहजता के प्रतीक कृष्ण , स्वभाव की पूर्ण खिलावट के प्रतीक कृष्ण , अभिनयपूर्ण जीवन के प्रतीक कृष्ण , फलाकांक्षामुक्त कर्म के प्रतीक कृष्ण, राजपथरूप भव्य जीवनधारा के प्रतीक कृष्ण , वंशीरूप जीवन के प्रतीक कृष्ण , परिशिष्ट : नवसंन्यास ।

इस ग्रन्थ में ओशो से पूछा गया है : कृष्ण को पूर्णावतार कहने के क्या-क्या कारण हैं ? कुछ और नये कारण बतायें ।

इसके उत्तर में ओशो कहते हैं : ' नहीं , पूर्ण को कहने का और कोई कारण नहीं है । जो व्यक्ति भी शून्य हो जाता है , वह पूर्ण हो जाता है । शून्यता पूर्णता की भूमिका है । अगर ठीक से

कहें तो शून्य ही एक मात्र पूर्ण है है । इसलिए आप आधा शून्य नहीं खींच सकते । ज्यामेट्री में भी नहीं खींच सकते । आप अगर कहें कि मैंने आधा शून्य खींचा , तो वह शून्य नहीं रह जायेगा , आधा शून्य होता ही नहीं । शून्य सदा पूर्ण ही होता है । पूरा ही होता है । अधूरे का कोई मतलब ही नहीं होता । शून्य के दो हिस्से कैसे करियेगा ? और जिसके दो हिस्से हो जायें उसको शून्य कैसे कहियेगा ? शून्य कटता नहीं , बंटता नहीं , इंडिविजिबल है । विभाजन नहीं होता । जहां से विभाजन शुरू होता है , वहां से संख्या शुरू हो जाती है । इसलिए शून्य के बाद हमें एक से शुरू करना पड़ता है । एक , दो , तीन यह फिर संख्या की दुनिया है । सब संख्याएं शून्य से निकलती हैं और शून्य में खो जाती हैं । शून्य एक मात्र पूर्ण है । " 61

और शून्य कौन हो सकता है ? वही हो सकता है जिसका कोई चुनाव नहीं । जिसने चुन लिया वह तो कुछ हो गया । जिसने कुछ होने को स्वीकार कर लिया , उसके व्यक्तित्व में "समबडीनेस" का समावेश हो गया । "नथिंगनेस " कट गया । असल में जिसको सबकुछ होना है , उसे न-कुछ होने की तैयारी चाहिए । झेन फकीरों का एक कोड है : "वन हू लांग्स टू बी एवरीव्हेर , मस्ट नोट बी एनीव्हेयर. " विचित्र लगता है , विरोधी लगता है । कृष्ण के जीवन में भी हमें यही मिलता है — विचित्रता , विरोध । ओशो कहते हैं :

"कृष्ण के पूरे होने का दूसरा अर्थ है कि कृष्ण के जीवन में वह सबकुछ है जो कि एक ही जीवन में होना मुश्किल है । असंभव लगता है । सब कुछ है — विरोधी , ठीक विरोधी । कृष्ण से ज्यादा असंगत , ? इनकंसिस्टेंट ? व्यक्तित्व नहीं है । जीसस के व्यक्तित्व में एक संगति है , महावीर के व्यक्तित्व में एक संगति है , बुद्ध के व्यक्तित्व में एक तर्क है , एक संगतिपूर्ण व्यवस्था है , एक

सिस्टम है । बुद्ध का एक हिस्सा समझ लो, तो पूरे बुद्ध समझ में आ जाते हैं । रामकृष्ण ने कहा है कि एक साधु समझ लो तो सब साधु समझ में आ जाते हैं । यह कृष्ण की बाबत न लगेगा । रामकृष्ण ने कहा कि समुद्र की एक बूंद समझ लो तो पूरा समुद्र समझ में आ जाता है । यह कृष्ण की बाबत न लगेगा । समुद्र एकरस है, एक बूंद चखो तो खारी है, दूसरी बूंद चखो तो खारी है — सब नमक ही है । लेकिन कृष्ण में शक्कर भी मिल सकती है, और पक्का नहीं है कि पड़ोस की बूंद में शक्कर हो । कृष्ण का व्यक्तित्व जो है, सबरस है । " 62

इसी ग्रंथ में एक स्थान पर एक जिज्ञासु ओशो से प्रश्न करता है : "नौ सौ निन्यानबे गाली सहने वाले कृष्ण उससे आगे की एक भी गाली को न सुन सके और चक्र से शिशुपाल का वध कर बैठे । इससे क्या यह तय नहीं होता कि पहले दी गयी गालियों को भी सिर्फ वे प्रकट रूप से सह रहे थे और अंतर में तो असहिष्णु ही थे ? " 63

इसके उत्तर में ओशो कहते हैं : " ऐसा नहीं है कि नौ सौ निन्यानबे गालियां सहने तक उनकी सहिष्णुता थी । नौ सौ निन्यानबे गालियां काफी गालियां हैं, और जो नौ सौ निन्यानबे सह सकता होगा, वह हजारवीं नहीं सह सकता होगा, सोचना जरा मुश्किल है । बड़ा सवाल कृष्ण के लिए यह नहीं है कि उनकी सहिष्णुता चुक गयी, बड़ा सवाल यह है कि अब सामने का जो आदमी है, अब उसकी सीमा आ गयी । अब इससे ज्यादा सहे जाना सहिष्णुता का सवाल नहीं है, इससे ज्यादा सहे जाना बुराई को बनाये रखने का सवाल है । इससे ज्यादा सहे जाना अब अधर्म को बचाना होगा । क्योंकि इतना तो बहुत ही साफ है कि नौ सौ निन्यानबे गालियां काफी हैं । " 64

इसी ग्रंथ में एक व्यक्ति ने पूछा कि " श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रियों के

अति आकर्षित होने में क्या कारण थे ? हजारों-लाखों गोपियां उनके पीछे दीवानी थीं, और उनके सहवास से ही उन्हें तृप्ति मिलती थी, ऐसा क्यों होता था ? " 65

इसके उत्तर में ओशो कहते हैं : " कृष्ण के प्रति इतने आकर्षण का एक ही कारण है कि कृष्ण पूरे पुरुष हैं। जितना पूर्ण पुरुष होगा उतना आकर्षक हो जायेगा स्त्रियों को। जितनी स्त्री पूर्ण होगी उतनी आकर्षक हो जायेगी पुरुषों को। पुरुष की पूर्णता कृष्ण में पूरी तरह प्रकट हो सकी है। महावीर कम पुरुष नहीं है। ठीक कृष्ण जैसे ही पूरे पुरुष हैं। लेकिन महावीर की पूरी साधना, अपने पुरुष होने को छोड़ देने की साधना है। महावीर की पूरी साधना वह जो स्त्री-पुरुष के नियम का जगत है, उसके पार हो जाने की साधना है। फिर भी इस सारी साधना के बावजूद भी महावीर की भिक्षुणियां चालीस हजार हैं और भिक्षु दस हजार हैं। फिर भी स्त्रियां ही ज्यादा आकर्षित हुई हैं। जहां चार साधु महावीर के पीछे थे वहां तीन स्त्रियां और एक पुरुष है। तो अगर महावीर के पास भी चालीस हजार संन्यासिनियां इकट्ठी हो जाती हैं, ऐसे व्यक्ति के पास जिसकी सारी साधना पुरुष और स्त्री होने के "ट्रांसेंडिंग" की है, पार जाने की है, जो अपने पुरुष होने को इनकार करता है, किसीके स्त्री होने को इनकार करता है, जो कहता है कि यह संसार की बातें हैं, इनसे पार सब है। लेकिन वह भी स्त्रियों के लिए आकर्षक है। .... तो कृष्ण के साथ तो और भी अद्भुत स्थिति है। कृष्ण तो कुछ छोड़कर भागे हुए नहीं हैं। स्त्रियां उनके पास सिर्फ साध्वी होकर खड़ी रह सकती हैं, ऐसा नहीं है। सिर्फ उनको देख सकती हैं, ऐसा नहीं है। कृष्ण के साथ नाच भी सकती हैं। तो अगर कृष्ण के पास लाखों स्त्रियां इकट्ठी हो गयीं हों, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। सहज है। " 66

गांधीजी स्त्रियों के कंधे पर हाथ रखकर चलते थे इस संबंध में पूछे जाने पर ओशो ने जो उत्तर दिया था वह अनूठा और उनकी नारी-विषयक विभावना को स्पष्ट करने वाला था ।

" गांधीजी स्त्रियों के कंधे पर हाथ रखकर चले हैं, शायद इसी भांति कि वे पहले पुरुष हैं । कोई कभी किसी स्त्री के कंधे पर हाथ रखकर नहीं चला है । " [67] इस पर बीच में किसीने फब्ती कसी कि "बूढ़े थे, इसलिए ?" इसका बड़ा अनूठा, सुंदर और जोरदार जवाब ओशो ने दिया है । " नहीं, बूढ़े नहीं थे । बूढ़े नहीं थे तब भी रखते थे । गांधीजी का स्त्री के कंधे पर हाथ रखकर चलना किसी विशेष घोषणा के लिए है । इस मुल्क में, जहां सदा ही स्त्री ने पुरुष के कंधे पर हाथ रखा हो, जहां सदा ही स्त्री अर्द्धांगिनी रही हो, और नंबर दो की अर्द्धांगिनी, नंबर एक की कभी नहीं, जहां स्त्री सदा ही पीछे रही हो, आगे कभी नहीं ; जहां स्त्री का होना ही "सैकेंड्री" हो गया हो, द्वितीय कोटि का हो गया हो, वहां गांधी को लगता है कि किसी पुरुष को यह घोषणा करनी चाहिए कि स्त्री के कंधे भी इतने कमजोर नहीं, उस पर भी हाथ रखा जा सकता है । यह एक लंबी परंपरा के खिलाफ एक प्रयोग है, और कुछ भी नहीं, और कोई कारण नहीं है ।" [68]

अभिप्राय यह कि कृष्ण के चरित्र पर अनगिनत लोगों ने अनगिनत बातें कहीं हैं । कृष्ण का चरित्र बहुआयामी है । हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने कृष्ण-साहित्य की बात करते हुए कृष्ण-चरित्र को भी उठाया है । रवीन्द्र, गांधी, अरविन्द, जे. कृष्णमूर्ति, आठवले से लेकर मुरारीबापू तथा डोंगरे महाराज तक के लोगों ने कृष्ण के जीवन पर कुछ-न-कुछ कहा है । पर ओशो ने कृष्ण-चरित्र पर जो कहा है, वह इन सबसे अलग है, अनूठा, निराला है, विचित्र है । कृष्ण की बात कभी पूरी तरह से हो ही नहीं सकती : " बात तुम्हारी ज़िन्दगी भर की मगर, बात इतनी बात आधी रह गई ।"

<u>ईशावास्योपनिषद :</u>

सभी उपनिषदों में ईशावास्योपनिषद का विशेष महत्व है । हमारे सभी युगपुरुषों ने इस उपनिषद पर कुछ-न-कुछ कहा है । वरिष्ठ पत्रकार व लेखक श्री. एम.वी. कामठ ओशो के विषय में कहते हैं : "ओशो एक युगपुरुष हैं । युगपुरुष शाश्वत होता है , उसे सदा स्मरण किया जाता है , आनेवाली पीढ़ियों के लिए भी उसका महत्व होता है , मनुष्य के लिए उसके पास विशेष संदेश होता है । मेरी दृष्टि में ओशो ऐसे ही एक अनूठे युगपुरुष हैं , जो मानवता को एक नया बोध प्रदान करते हैं । " 69

उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि हमें अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चलो । तमसो मा ज्योतिर्गमय । हमें मृत्यु से अमृत की तरफ ले चलो । मृत्योर्मा अमृतंगमय । यह प्रार्थना सारी मनुष्य जाति की प्रार्थना है — कि हमें असत से सत की ओर ले चलो — असतो मा सदगमय । इन तीन छोटे वचनों में सारी प्रार्थनाओं का निचोड़ आ गया है , सारी पूजाओं का निचोड़ आ गया है । और इन तीन प्रार्थनाओं को भी एक ही पंक्ति में बांधा जा सकता है — असतो मा सदगमय — कि हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो । असत है अंधकार और असत है मृत्यु , और सत है अमृत और सत है आलोक । 70

इस ग्रन्थ का सम्पादन स्वामी निकलंक भारती तथा स्वामी आनंद सत्यार्थी ने किया है और संकलन मा योगभक्ति तथा मा प्रेम कल्पना ने किया है । भूमिका लिखी है मेवाती घराने के लब्धप्रतिष्ठ संगीत मार्तण्ड पंडित जसराजजी ने । उसमें वे लिखते हैं : "ईशावास्य पर ओशो का कथन — या किसी भी महाग्रन्थ पर उनका वक्तव्य — एक विशेष महत्व रखता है । क्योंकि सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हर वक्तव्य के साथ ध्यान जुड़ा है । कुछ भी समझाने की चेष्टा

उसमें नहीं है, कुछ करवाने का अथक प्रयास है। ऐसा कुछ जिससे हर व्यक्ति को जीवन " आनंद आमार जाति, उत्सव आमार गोत्र " हो सके। ... वे [ओशो] जीवन के वसंत हैं। उनकी मधु-रिमा हर जगह महसूस होती है। उनके लिए मैं सिवाय मौन के, प्रार्थना के, संगीत के क्या अभिव्यक्त करूं? समीर एक मुक्तक आज और दे गया है —

" आडंबर शब्द मेरे
तू निःशब्द मौन
मैं अवाक् सा
समीप तेरे। "

मैं समीर से पूर्णतया सहमत हूं। " 71

प्रस्तुत ग्रन्थ निम्नलिखित 13 अनुभागों में विभाजित है : वह पूर्ण है, वह परम भोग है, वह निमित्त है, वह अतिक्रमण है, वह समत्व है, वह स्वयंभू है, वह अव्याख्य है, वह चैतन्य है, वह ज्योतिर्मय है, वह ब्रह्म है, वह शून्य है, असतो मा सद्गमय, ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

इसके प्रथम अनुभाग में वे ईशावास्योपनिषद के महावाक्य " ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं " की बड़ी सुंदर व्याख्या करते हैं : " इस महावाक्य से मैं आपको कहना चाहता हूं कि इस छोटे-से दो वचनों के महाकाव्य में पूरब की प्रज्ञा ने जो भी खोजा है, वह सभी का सभी इकट्ठा मौजूद है। वह पूरा का पूरा मौजूद है। इसलिए भारत में हम निष्कर्ष पहले, xxxxxxxx कनक्लूजन पहले, प्रक्रिया बाद में। पहले घोषणा कर देते हैं, सत्य क्या है, फिर वह सत्य कैसे जाना जा सकता है, वह सत्य कैसे जाना गया है, वह सत्य कैसे समझाया जा सकता है, उसके विवेचन में पड़ते हैं। यह घोषणा है। जो

घोषणा से पूरी बात समझ ले , शेष किताब बेमानी है । ... कहा है कि पूर्ण से पूर्ण पैदा होता है , फिर भी सदा पीछे पूर्ण शेष रह जाता है । और अंत में , पूर्ण में पूर्ण लीन हो जाता है , फिर भी पूर्ण कुछ ज्यादा नहीं हो जाता है ; उतना ही होता है , जितना था । यह बहुत ही गणित-विरोधी वक्तव्य है , बहुत एंटी-मैथमैटिकल है । पी.डी. आस्पेंस्की ने एक किताब लिखी है । किताब का नाम है , टर्शियम आर्गानम । किताब के शुरू में उसने एक छोटा-सा वक्तव्य दिया है । पी.डी. आस्पेंस्की रूस का एक बहुत बड़ा गणितज्ञ था । बाद में पश्चिम में एक बहुत अद्भुत गुरजिएफ के साथ वह एक xxx रहस्यवादी संत हो गया । लेकिन उसकी समझ गणित की है — गहरे गणित की । उसने अपनी इस अद्भुत किताब के पहले ही एक वक्तव्य दिया है , जिसमें उसने कहा है कि दुनिया में केवल तीन अद्भुत किताबें हैं ; एक किताब है अरिस्टोटल की — पश्चिम में जो तर्क-शास्त्र का पिता है , उसकी — उस किताब का नाम है : आर्गानम । आर्गानम का अर्थ होता है , ज्ञान का सिद्धान्त । फिर आस्पेंस्की ने कहा है कि दूसरी महत्वपूर्ण किताब है रोजर बैकन की , उस किताब का नाम है : नोवम आर्गानम — ज्ञान का नया सिद्धान्त । और तीसरी किताब वह कहता है मेरी है , खुद उसकी , उसका नाम है : टर्शियम आर्गानम — ज्ञान का तीसरा सिद्धान्त । और इस वक्तव्य को देने के बाद उसने एक छोटी-सी पंक्ति लिखी है जो बहुत हैरानी की है । उसमें उसने लिखा है , बिफोर द फर्स्ट एक्जिस्टेड , दि थर्ड वाज़ । इसके पहले कि पहला सिद्धान्त दुनिया में आया , उसके पहले भी तीसरा था । " 72

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ओशो के वक्तव्य का एक खास अन्दाज़ होता है । ओशो को पढ़ने का , सुनने का मतलब ही यह होता है कि हम ज्ञान के महासागर की सैर कर रहे हैं । जैसे महा-भारत में अनेक बातों का समाहार हो जाता है , ठीक वैसे ही

ओशो के वक्तव्य में दुनियाभर की ज्ञान की बातें समाविष्ट हो जाती हैं। ओशो को पढ़ने से दृष्टि खुलती है, ज्ञान बढ़ता है, अनेक विषयों की जानकारी मिलती है।

"वह समत्व है" नामक अनुभाग में ओशो संन्यासी के संदर्भ में एक नयी बात बताते हैं : "मैं जिसको संन्यास कहता हूं, ऐसे ही व्यक्ति को संन्यासी कहता हूं, जो कहता है, अतीत से मैं अपने को तोड़ता हूं। अब मैं वही नहीं रहूंगा जो मैं कल तक था। वह आइडेंटिटी समाप्त करता हूं। इसलिए नाम परिवर्तन करते हैं। नाम परिवर्तन सिंबालिक है, सांकेतिक है, सूचक है इस बात का कि वह जो पुराना था, वह जो पुराना मैं था, अब नहीं रहूंगा। अब उससे छुटकारा करता हूं। अब वे सब स्मृतियां, वह सारा जाल अतीत का, वह उस पुराने नाम के साथ दफना देता हूं। अब मैं नया आदमी होता हूं। मैं अब नये से यात्रा शुरू करता हूं। नया होता हूं आज से, इस बात का संकल्प संन्यास है। और अब आज से कभी भी पुराना नहीं होऊंगा, इस बात का संकल्प भी संन्यास है।"[73]

"वह ज्योतिर्मय है" अनुभाग में ओशो ने एक बड़ी गहरी बात की है। सारा चक्कर द्वैत का है। निर्मल वर्मा के "वे दिन" उपन्यास में कहीं आता है कि जिनके सामने दूसरा रास्ता खुला है वे अधिक सुखी नहीं हो सकते।[74] गुजराती के कवि दयाराम ने भी इसको एक दूसरे ढंग से कहा है — "निश्चयना महेलमां वसे मारो वालमो" अर्थात् मेरा प्रियतम (ईश्वर) तो निश्चय के महल में निवास करता है। देखिए ओशो इस बारे में क्या कहते हैं :

"दुख में जो जीते हैं, उन्हें पता ही नहीं कि सुख का भी अपना दुख है। शत्रुओं में जो जीते हैं, उन्हें पता ही नहीं है कि मित्रों

को भी अपनी शत्रुता है । नर्क में जीते हैं , उन्हें पता ही नहीं कि स्वर्ग की भी अपनी पीड़ा है । अंधकार में जो जीते हैं , उन्हें अनुमान ही कैसे हो कि एक दिन प्रकाश भी कारागृह बन जाता है । जहां तक द्वैत है वहां तक अमुक्ति है । जहां तक द्वैत है , वहां तक बंधन है । •75

"वह शून्य है " नामक अध्याय में ओशो गुरजिएफ का एक बड़ा सुंदर संस्मरण देते हैं । गुरजिएफ के पिता ने मरते समय गुरजिएफ को एक सलाह दी — " कि जब भी कोई बुरा काम करने का सवाल उठे तो तू चौबीस घंटे रुक कर करना । करना जरूर । लेकिन चौबीस घण्टे रुक जाना । यह मेरे से वायदा कर । क्रोध करना हो , बिलकुल करना , मैं मना नहीं करता हूं । लेकिन चौबीस घण्टे रुककर करना । किसीकी हत्या करनी हो , बिलकुल करना । लेकिन चौबीस घण्टे रुककर करना । उसके बेटे ने पूछा , लेकिन उसका मतलब क्या ? तो उसके बाप ने कहा कि इससे तू अच्छी तरह से कर सकेगा । चौबीस घण्टे रुक जायेगा तो ठीक से नियोजना , योजना बना सकेगा , प्लानिंग कर सकेगा । और भूल-चूक कभी नहीं होगी , यह मेरी जिन्दगी का अनुभव है । इसको मैं तुझे दे सकता हूं । • 76

चरैवेति-चरैवेति :

सदियों पूर्व से अपने प्यारे सद्गुरु ने अपने परम शिष्यों को यात्रा शुरू करवायी है । उसी आत्यंतिक गुह्य वैज्ञानिक गुरु-शिष्य संबंधों पर रहस्यपूर्ण अंतरंग चर्चा-वार्ता आलाप-विलाप-संस्मरण की कथा है चरैवेति-चरैवेति । यहां चलना ही चलना है । यात्रा है । एक निरंतर यात्रा । एक नदी जैसी यात्रा । हर पल को , हर क्षण को उत्सव बनाना है । "ओशनिक" होना है । डूब जाना है ।

"इधर वे बोलते : उधर वो सुनता । उधर वो देखते : इधर वह सिमटता , इधर कानों ने देखा , उधर आंखों ने सुना । यहां से वहां तक की — तब से अब तक की — जो यात्रा है — वही है हम सब : संन्यास के पथिक-राही , अज्ञात और अज्ञेय की , अनंत और असीम की एक ' अनाम ' की यात्रा पर । " [77]यही है चरैवेति-चरैवेति ।

इस पुस्तक का संकलन तथा संपादन स्वामी दयाल भारती ने किया है । इसमें 22 अध्याय हैं : रूपांतरण की पृष्ठभूमि , सत्य की प्यास, "संन्यास : अकेले अज्ञात की यात्रा " , संन्यास-पूर्वाभास , प्रभुश्री के गर्भगृह से एक अज्ञात जन्मा , इशारा हो गया , उसने जब पुकारा था , "हे अज्ञात ! हे आश्चर्यजनक ! " , शब्दातीत की ओर ... , दूरियां नजदीकियां बन गईं , "कहोजी , क्या बात है ? " , "उल्लूजी ! सोते हो ? " , तुम्हें वापस जाना है अपने घर , "अज्ञात 'पागल' अजन्मा हो गया " , एक और उड़ान , "'अज्ञात ' के संबोधन में : अज्ञेय " , दस हजार बुद्धों का उत्सव , विधि-विxxx विधान छोड़ो और नाचो , "चमत्कार , सत्य या सपना ? " , समय और स्थान के पार ; एक और स्वतंत्रता " , "कहना कठिन है ! " , "मैं तुम्हें अपना स्वप्न सौंपता हूं ।

"सत्य की प्यास " में ओशो "सत्य" के संदर्भ में कहते हैं जो बड़ा मननीय है : " सत्य से जरा भी जूझना खेल नहीं है , खतरा है ; क्योंकि सत्य आपको वहीं नहीं छोड़ेगा जो आप हैं — बदलेगा , तोड़ेगा , मिटायेगा , नया करेगा , नया जन्म देगा । निश्चित ही नये जन्म की पीड़ा है । बिना प्रसव की पीड़ा के नया जन्म कहां ? ... और जब दूसरे को भी नया जन्म देने में इतनी पीड़ा होती है, तो स्वयं को ही जन्म देने में पीड़ा और भी ज्यादा होगी , क्योंकि

दूसरे को तो मां जन्म देते वक्त केवल नौ महीने ही पेट में रखती है, हमने अपने आपको अनंत - अनंत जन्मों से पेट में रखा हुआ है। जन्मों-जन्मों से जो केवल गर्भ है अभी, बीज ही है अभी, अनंत जन्मों हमने अपने को अपने ही गर्भ में रखा। " 78

लोग समझते हैं प्रेम करना आसान है। परंतु यह तो टेढ़ी खीर है। "एक आगका दरिया है और डूबकर जाना है"। और यही प्रेम ईश्वर की ओर ले जाता है। " प्रेम केवल प्रेम तने प्रभु कने लई जशे " — यह प्रेम ही केवल तुम्हें प्रभु के पास ले जायेगा। पर कितना कठिन है प्रेम करना, अहं को मारना पड़ता है, ममत्व को मारना पड़ता है, मन की स्लेट पर से सबकुछ मिटाना पड़ता है और यह बहुत कठिन है, क्योंकि मनुष्य सबसे ज्यादा अपने आप को चाहता है। अतः ओशो बार-बार प्रेम की बात करते हुए कहते हैं कि "सहज आसिकी नाहिं"। ओशो कहते हैं :

"वह जो भीतर मौन का अनुभव होता है, शून्य का अनुभव होता है, समाधि का अनुभव होता है ... उसे कहने का कोई ढंग न अब तक मिला है, और न कभी आगे मिलेगा। कोई दो और दो चार जैसी बात नहीं है। हां, प्रेम के किन्हीं क्षणों में शब्दों के साथ-साथ लिपटी हुई भीतर की शून्यता भी चली आती है। लेकिन बस प्रेम के क्षणों में ही संवाद होता है, और तो विवाद ही है। इसलिए जो यहां मुझे प्रेम से सुनने राजी हुए हैं, वे मेरे शब्दों के बीच के जो खाली स्थान हैं उनको भी सुन लेते हैं, मेरी पंक्तियों के बीच में जो रिक्तता है उसमें डुबकी लगा लेते हैं। मगर भीड़ को न सहानुभूति है, न प्रीति है, न सत्य की कोई खोज है, न कोई आकांक्षा है, न फुरसत है, न अभीप्सा है। ....' सहज आसिकी नाहिं '। यह प्रेम का रास्ता, यह परमात्मा का रास्ता, केवल उनके लिए जो अपने हाथ से अपनी गर्दन काटकर

रख सकते हैं । उनको ही मैं संन्यासी कहता हूं । जो पागल होने को राजी हैं , प्रेम में पागल होने को , जो दीवाने होने को राजी हैं । यह भीड़ का रास्ता भी नहीं है । " 79

इस संदर्भ में मुझे मेरे निर्देशक महोदय की दो पंक्तियां याद आती हैं :

"यह प्रेम का रास्ता नहीं आसान है इतना ;
यहां पर पांव धरते ही , फफोले दिलमें उठते हैं । "

इसी पुस्तक में एक स्थान पर ओशो कहते हैं :

"मैं राजनीतिक और पुरोहित , दोनों की एक साथ निंदा करता हूं ; क्योंकि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । वे मनुष्यता के खिलाफ़ मिलकर साजिश कर रहे हैं । उन्होंने एक विभाजन कर लिया है : राजनीतिक आदमी के शरीरों पर हुकूमत करेगा , पुरोहित उसकी आत्मा पर । और वे एक-दूसरे को सहारा देंगे , क्योंकि उनका स्वार्थ एक समान है — मनुष्यता का नियंत्रण । और जीवन को पूरी तरह से स्वतंत्रता की बुनियाद पर खड़ा करने का और किसीके भी द्वारा नियंत्रण की समस्त संभावनाओं को विनष्ट कर देने का मेरा प्रयास स्वभावतः राजनीतिकों और ... पुरोहितों को एक-दूसरे के करीब ले आया । .... मेरा अपराध है : स्वतंत्रता और सत्य । यदि तुम केवल बातें कर रहे हो तो वे पूरी तरह निश्चिंत हैं । [पर] मैं केवल बातें नहीं कर रहा ... मैं जो भी कह रहा हूं उसे सबके फलित अनुभव की तरह देखना चाहता हूं , जो मेरे साथ एक गहन प्रेमपूर्ण प्रतिबद्धता में हैं । ... सद्गुरु कुछ देता नहीं । सत्य कोई वस्तु तो नहीं है कि कोई दे देगा । सत्य का कोई हस्तांतरण नहीं होता । लेकिन फिर भी सद्गुरु एक अनिवार्य परिस्थिति पैदा कर देता है , जिसमें कि तुम सोये न रह सकोगे । " 80

यह पहले निर्दिष्ट हो चुका है कि ओशो का साहित्य तो एक महार्णव की भांति है । एक प्रबंध में उसका संपूर्ण परिचय देना अत्यंत ही दुष्कर कार्य है । अतः यहां बहुत संक्षेप में उनकी कुछ पुस्तकों का उल्लेख मात्र करने का उपक्रम है ।

उपनिषदों पर ओशो साहित्य :

उपनिषदों में हमारे दर्शन और चिंतन की गहराई उपलब्ध होती है । अतः ओशो उपनिषदों पर न कहते तो ही आश्चर्य होता । उपनिषदों पर उनके निम्नलिखित ग्रंथ मिलते हैं : सर्वसार उपनिषद , कैवल्य उपनिषद , अध्यात्म उपनिषद , कठोपनिषद , ईशावास्योपनिषद , निर्वाण उपनिषद , आत्म-पूजा उपनिषद , केनोपनिषद , मेरा भारत महान (विविध उपनिषद-सूत्र) ।

कृष्ण , महावीर और बुद्ध पर ओशो-साहित्य :

भारत के महानायकों और उनके चिंतन-दर्शन पर भी ओशो ने विचार किया है । कृष्ण से संबद्ध उनके दो महाग्रंथ हैं : कृष्ण-स्मृति और गीता-दर्शन । गीता-दर्शन आठ भागों में है जिनके अन्तर्गत अठारह अध्यायों का सांगोपांग सटीक आकलन हुआ है । जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी पर उनके कुल छः ग्रन्थ उपलब्ध हैं : महावीर-वाणी (दो भागों में) , महावीर-वाणी (पुस्तिका) , जिन-सूत्र (दो भागों में) , महावीर या महाविनाश , "महावीर : मेरी दृष्टि में " , ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया । बुद्ध पर ओशो का एक ग्रंथ उपलब्ध है — " ए स धम्मो सनंतनो " — जो बारह भागों में है ।

लाओत्से , अष्टावक्र , झेन साधु तथा सूफियों पर ओशो-साहित्य :

लाओत्से पर "ताओ उपनिषद" ग्रन्थ छः भागों में संकलित है । अष्टावक्र

की महागीता छः भागों में संकलित है । शांडिल्य का "अथातो भक्ति जिज्ञासा " दो भागों में संकलित है । जरथुस्त्र पर भी उनकी एक पुस्तक है : नाचता-गाता मसीहा । झेन साधुओं तथा सूफियों पर उनके तीन ग्रन्थ मिलते हैं : बिन बाती बिन तेल , सहज समाधि भली , दीया तले अंधेरा ।

ध्यान, साधना , योग तथा तंत्र पर ओशो साहित्य :

ध्यान-साधना और योग पर ओशो के छः ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं : "ध्यान योग : प्रथम और अंतिम मुक्ति " , रजनीश ध्यानयोग , (" हसिबा , खेलिबा , धरिबा ध्यानम् " , "नेति-नेति" , मैं कहता आंखन की देखी , "पतंजलि योग-सूत्र " (दो भागों में) । तंत्र पर उनके दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं : "(तंत्र-सूत्र " (पांच भागों में) , संभोग से समाधि की ओर)।

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं पर ओशो-साहित्य :

भारत की कोई ऐसी राष्ट्रीय या सामाजिक समस्या न होगी जिस पर ओशो की दृष्टि न गई होगी । भारत या विश्व की समस्याओं को लेकर उनके निम्नलिखित ग्रंथ मिलते हैं : देख कबीरा रोया , स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का (भारत के जलते प्रश्न) , शिक्षा में क्रांति , नये समाज की खोज । इनके अतिरिक्त उनके कई पत्र-संकलन भी उपलब्ध होते हैं जिनमें जिज्ञासुओं की अनेक समस्याओं का समाधान उन्होंने किया है । ऐसे पत्र-संकलनों में निम्नलिखित मुख्य हैं : क्रांति-बीज , पथ के प्रदीप , अंतर्वीणा , प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल । "मिट्टी के दीये" के रूप में उनकी बोध-कथाओं का संकलन मिलता है ।

साधना-शिविरों का साहित्य :

ओशो ने अनेक स्थानों पर साधना-शिविर करवाये थे । उन शिविरों

में जो व्याख्यान दिये गये होंगे वे भी अब पुस्तकाकार रूपों में आ रहे हैं । ऐसे ग्रंथों में निम्नलिखित मुख्य हैं : साधनापथ , ध्यान-सूत्र, जीवन ही है प्रभु , माटी कहै कुम्हार सूं , मैं मृत्यु सिखाता हूं , जिन खोजा तिन पाइयां , समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की) , साधना-सूत्र (मेबिल-कोलिन्स) ।

प्रश्नोत्तर -साहित्य :

प्रश्नोत्तर के रूप में उनकी कई पुस्तिकाएं प्रकाशित हुई हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं : नहिं राम बिन ठांव , उत्सव आमार जाति आनंद आमार गोत्र , प्रीतम छवि नैनन बसी , रहिमन धागा प्रेम का , पिय को खोजन मैं चली , साहेब मिल साहेब भये , जो बोलैं तो हरि-कथा , ज्यूं मछली बिन नीर , दीपक बारा नाम का, अनहद में बिसराम , पीवत रामरस लगी खुमारी , फिर पत्तों ~~क्र~~ की पाजेब बजी , फिर अमरित की बूंद पड़ी , चेति सकै तो चेति , चल हंसा उस देस , पंथ प्रेम को अटपटो , सत्यम् शिवम् सुंदरम् , रसो वै सः , पंडित पुरोहित और राजनेता : मानव-आत्मा के शोषक , ऊँ मणि पद्मे हुम् , ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः , हरिऊँ तत्सत् , मैं धार्मिकता सिखाता हूं धर्म नहीं ।

संत-साहित्य पर ओशो-साहित्य :

परंतु हिन्दी में ओशो का जो सर्वोपरि प्रदान है और जिसके कारण हिन्दी साहित्य उनका सदैव ऋणी रहेगा वह तो है ओशो का वह साहित्य जो उन्होंने कबीर , मीरा , दादू , जगजीवन , पलटू , मलूक , नानक , दयाबाई , सहजोबाई , रज्जब , वाजिद , रैदास आदि संतों को लेकर लिखा है । आगामी अध्याय उसी पर दिया जा रहा है , अतः यहां उसका केवल संकेत भर दिया गया है । इनमें भी कबीर तो ओशो का प्रिय कवि प्रतीत होता है , क्योंकि समग्र ओशो साहित्य में कबीर का ~~xxx~~ जिक्र जब-तब होता ही रहता है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्राकलन से हम कह सकते हैं कि ओशो एक बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न, बल्कि अलौकिक-दिव्य-प्रतिभासंपन्न व्यक्ति हैं। ओशो-साहित्य महार्णव या महाम्बर की भांति है। समुद्र की थाह लगाना मुश्किल है, आकाश के तारों को गिनना मुश्किल है, उतना ही कठिन ओशो-साहित्य का अवगाहन है। धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, कला, साहित्य, इतिहास, पुराण आदि सभी विषयों पर ओशो ने मौलिक ढंग से विचार किया है। ठीक उसी तरह संसार के महान चिंतकों तथा नायकों पर भी उनके विचार ध्यानार्ह हैं। कृष्ण, राम, बुद्ध, महावीर, जीसस, मुहम्मद, जरथुस्त्र, लाओत्से जैसे युगपुरुषों पर उन्होंने अपने ढंग से विचार किया है। फ्रायड, एडलर, युंग, पावलोव, जिन पायागेट जैसे मनोवैज्ञानिक; प्लेटो, अरस्तू, गुरजिएफ, मार्क्स, लेनिन, एंजिल, गांधी, अरविंद, जे. कृष्णमूर्ति, रामकृष्ण प्रभृति चिंतक-विचारक-राजनीतिक; कबीर, दादू, रैदास, पलटू, मलूक, नानक, मीरा आदि संत; भारत की तथा विश्व की सभी प्रमुख समस्याएं जैसे अनेकानेक विषयों पर ओशो ने व्याख्यान दिये हैं। इस प्रकार ओशो-साहित्य को पढ़ने का अर्थ होता है एक अनवरत अनंत यात्रा : अनुभूति की यात्रा, अनुभवों की यात्रा, ज्ञान की यात्रा, साधना की यात्रा।

===== XXXXXX ========

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ ओशो : सुरेश दलाल : पृ. 6 ।

§2§ वही : पृ. 6-7 ।

§3§ वही : पृ. 7 ।

§4§ सुनो भाई साधो : ओशो : पृ. 4 ।

§5§ वही : पृ. 58-59 ।

§6§ वही : पृ. 262-263 ।

§7§ पुस्तक के द्वितीय पृष्ठ भाग से ।

§8§ ऊँ मणि पद्मे हुम : पृ. 11 ।

§9§ वही : पृ. 11 ।

§10§ वही : पृ. 45 ।

§11§ वही : पृ. 45 ।

§12§ ओशो टाइम्स : जुलाई - 1997 : पृ. 48 ।

§13§ द्रष्टव्य : पतंजलि योग-सूत्र : भा-1 : फ्लेप से ।

§14§ वही : पृ. 246 ।

§15§ समुंद समाना बुंद में : पृ. 24-25 ।

§16§ वही : पृ. 45 ।

§17§ वही : पृ. 103 ।

§18§ वही : पृ. 144-145 ।

§19§ "महावीर : परिचय और वाणी " : निवेदन से ।

§20§ वही : पृ. 125-126 ।

§21§ द्रष्टव्य : ध्यानयोग : फ्लेप से ।

§22§ वही ।

§23§ वही : द्वितीय फ्लेप से ।

§24§ वही : पृ. 252 ।

§25§ वही : पृ. 252-253 ।

§26§ घाट भुलाना बाट बिनु : आमुख से ।

§27§ वही : पृ. 23 ।

§28§ वही : पृ. 25 ।

§29§ वही : पृ. 133-134 ।

§30§ तत्वमसि : भूमिका से ।

§31§ वही : प्रथम फ्लेप से ।

§32§ वही : पृ. 16 ।

§33§ वही : पृ. 101 ।

§33-ए§ तुलनीय : हद चले सो औलिया , बेहद चले सो पीर ।
हद-बेहद दोनों चले , उसका नाम फकीर ।।

§34§ वही : पृ. 416 ।

§35§ मानसमाला : पृ. ।

§36§ ~~भारत के जलते प्रश्न : भूमिका से~~ तत्वमसि : पृ. 601 ।

§37§ ~~वही : आगे-पीछे के फ्लेप से~~ भारत के जलते प्रश्न : ~~आगे-पीछे~~
~~§38§ के फ्लेप से~~ भूमिका से ।

§38§ वही : आगे-पीछे के फ्लेप से ।

§39§ वही : पृ. 33-34 ।

§40§ वही : पृ. 34 ।

§41§ वही : पृ. 173-174 ।

§42§ वही : पृ. 249-250 ।

§43§ दैनिक हिन्दुस्तान : पटना ।

§44§ लिंग्वा फ्रान्काज़ : स्पेशल रिपोर्ट : टाइम्स आफ इण्डिया :
निखत काज़मी : 13-7-97 : पृ. 13 ।

§45§ संभोग से समाधि की ओर : पृ. 35 ।

§45-ए§ ध्यान रहे : पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका फिल्म अभि-
नेता महिपाल ने लिखी थी ।

§46§ संभोग से समाधिकी की ओर : भूमिका से ।

§47§ संभोग से समाधि की ओर : फ्लेप से ।

§48§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 29 ।

§49§ वही : पृ. 34-35 ।

§50§ वही : पृ. 119-120 ।

§51§ वही : पृ. 242 ।

§52§ शिक्षा में क्रांति : फ्लेप से ।

§53§ वही : भूमिका से ।

§54§ वही : पृ. 48-49 ।

§55§ वही : पृ. 50 ।

§56§ वही : पृ. 128 ।

§57§ वही : पृ. 410-411 ।

§58§ कृष्ण-स्मृति : फ्लेप से ।

§59§ वही ।

§60§ वही : भूमिका से ।

§61§ वही : पृ. 37-38 ।

§62§ वही : पृ. 39-40 ।

§63§ वही : पृ. 213 ।

§64§ वही : पृ. 213 ।

§65§ वही : पृ. 456 ।

§66§ वही : पृ. 456-457 ।

§67§ वही : पृ. 459 ।

§68§ वही : पृ. 459 ।

§69§ ईशावास्योपनिषद : पृष्ठ भाग से उद्धृत ।

§70§ ओशो रजनीश : इसी पुस्तक से ।

§71§ ईशावास्योपनिषद : भूमिका से ।

§72§ वही : पृ. 5-6 ।

§73§ वही : पृ. 89 ।

§74§ वे दिन : निर्मल वर्मा : पृ. 62 ।

§75§ ईशावास्योपनिषद : भूमिका से ।

§76§ वही : पृ. 214 ।

§77§ चरैवेति-चरैवेति : दूसरे मुखपृष्ठ से ।

§78§ वही : पृ. 9 ।

§79§ वही : पृ. 103 ।

§80§ वही : पृ. 201-202 ।

======= XXXXXXXX =========